* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

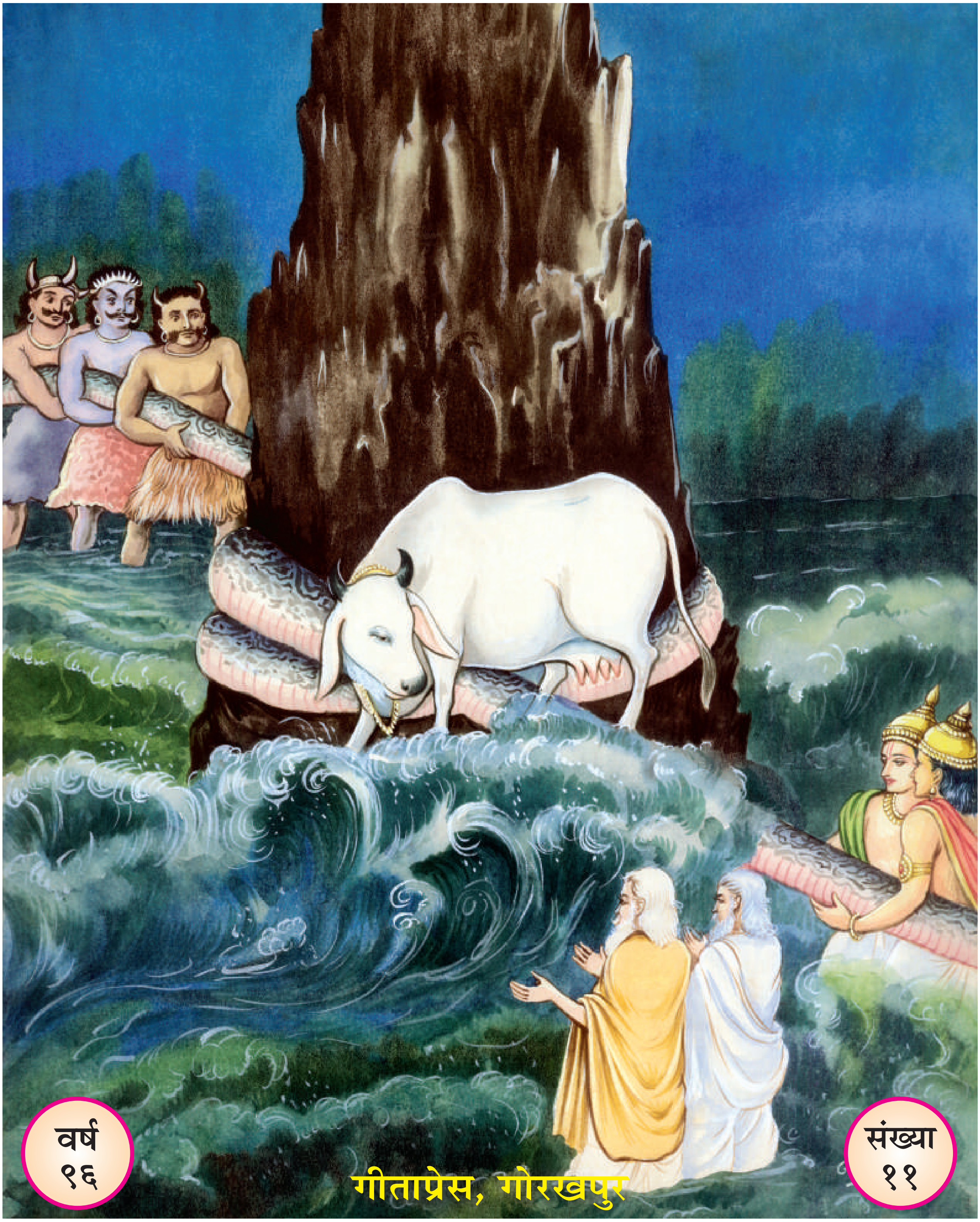

समुद्र-मन्थनसे कामधेनुका प्राकट्य

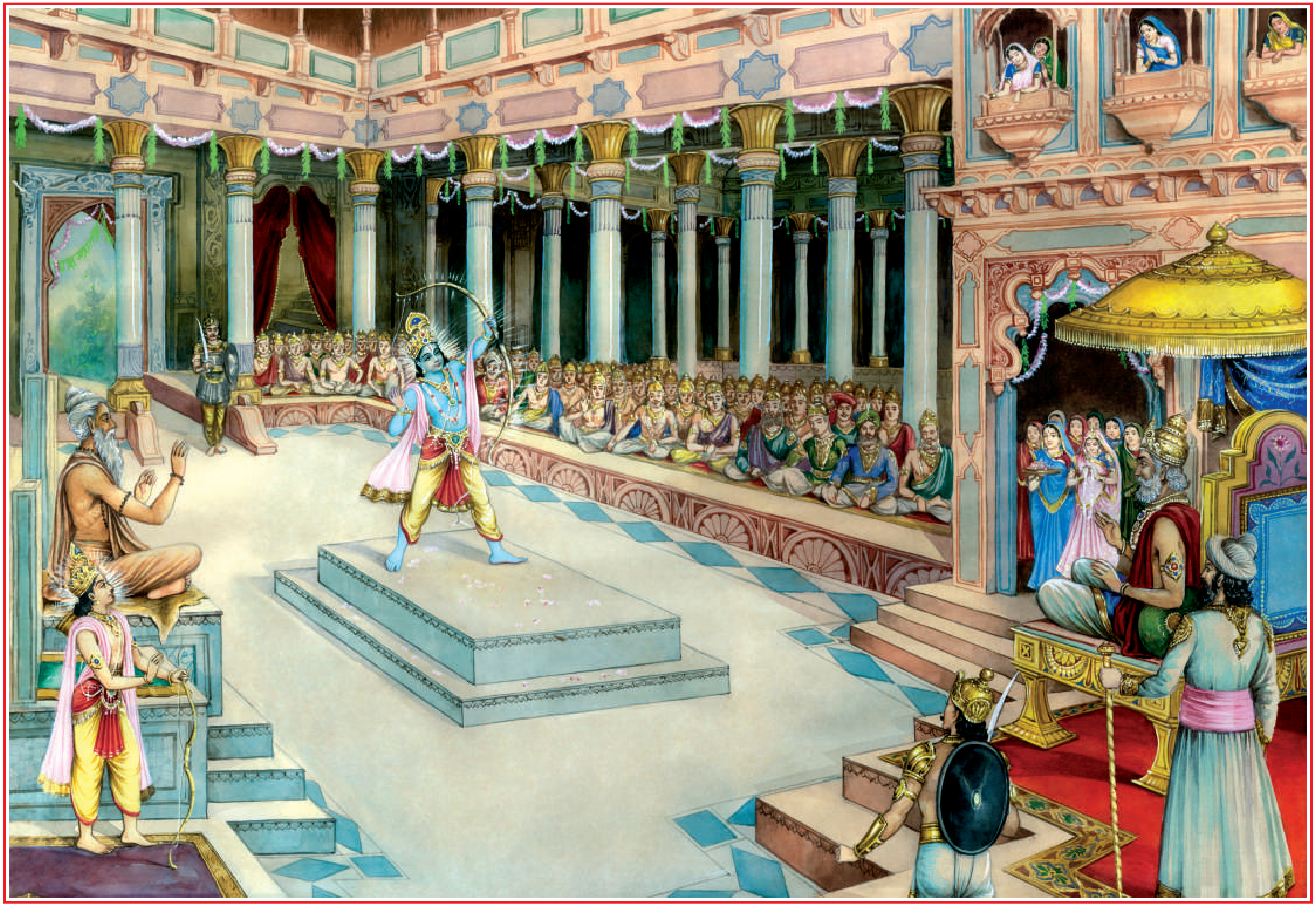

धनुष-भंग

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

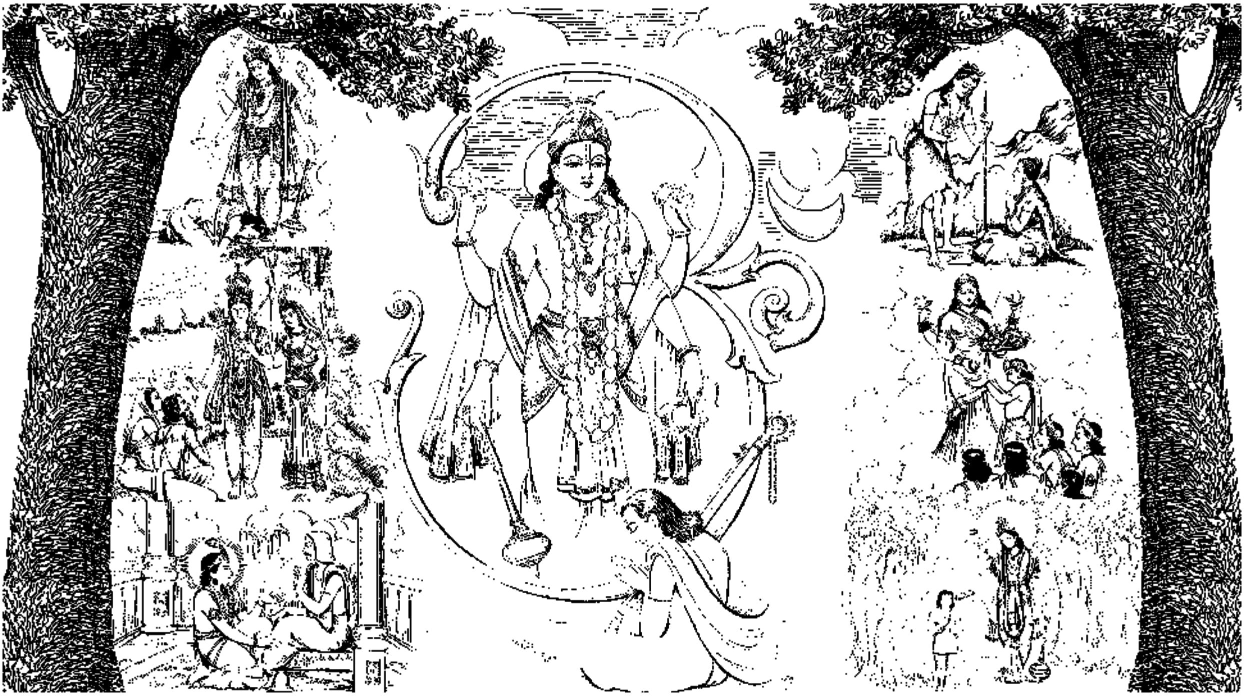

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, नवम्बर २०२२ ई० | संख्या ११

पूर्ण संख्या ११५२

धनुष-भंग

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥
छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥
सो०—संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, नवम्बर २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ११

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- धनुष-भंग	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- समुद्र-मन्थनसे कामधेनुका प्राकट्य **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- पुराण-महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- श्रीरामचरितमानस सच्चा इतिहास है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
७- भगवान् श्रीरामचन्द्र—सर्वमान्य आदर्श (परमपूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर)	११
८- धीर, वीर और गम्भीर (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१२
९- संघर्षका कारण **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३
१०- माधवका जीवनदर्शन (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)	१५
११- श्रीहनुमान-चालीसा-चिन्तन (पं० श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)	१८
१२- हिन्दू संस्कारोंकी महानता (श्रीमती आशा सिंह)	२०
१३- उत्तेजनाके क्षणोंमें **[हमारे आन्तरिक शत्रु]** (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	२१
१४- परम श्रेष्ठ बिरवा तुलसीका (डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, एल०-एल०बी०, साहित्यवाचस्पति)	२४
१५- श्रेष्ठ कर्म ही सच्चे साथी (श्रीप्रह्लाद वन गोस्वामी)	२५
१६- लक्ष्मणकी जिज्ञासा (डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)	२६
१७- श्रीहनुमान-चालीसाकी रचना (श्रीविश्वशान्ति टेकड़ीवाल परिवारकी प्रस्तुति)	२९
१८- अनासक्ति और संन्यास (स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीजी महाराज)	३०
१९- सन्त-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	३१
२०- सुख-दुःख (श्रीलालजी मिश्र)	३२
२१- भगवन्नाम-स्मरण भगवान्की कृपासे ही होता है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	३४
२२- उत्तराखण्डके आराध्य टपकेश्वर महादेव **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीउदयजी ठाकुर)	३५
२३- कष्टोंका मूल्य **[बोधकथा]**	३६
२४- 'प्यार बच्चोंपर लुटायें तो कोई बात बने' (सुश्री कृष्णा कुमारीजी)	३७
२५- गुरु गोरखनाथ—एक महायोगी **[सन्त-चरित]** (प्रो० श्रीरामदरश रायजी एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	३९
२६- भगवत्कृपाकी अद्भुत महिमा	४१
२७- गाय स्वस्थ तो पालक, समाज और देश धनवान् (श्रीमुलकराजजी बिरमानी)	४२
२८- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२९- व्रतोत्सव-पर्व **[पौषमास के व्रत-पर्व]**	४५
३०- कृपानुभूति	४६
३१- पढ़ो, समझो और करो	४७
३२- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१ - समुद्र-मन्थनसे कामधेनुका प्राकट्य .	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२ - धनुष-भंग	(,,)	मुख-पृष्ठ
३ - समुद्र-मन्थनसे कामधेनुका प्राकट्य	(इकरंगा)	७
४ - पुराण-विग्रह श्रीहरि	(,,)	८
५ - तुलसी-पूजन	(इकरंगा)	२४
६ - श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद	(,,)	२७
७ - श्रीटपकेश्वर महादेव	(,,)	३५
८ - गुरु गोरखनाथ	(,,)	३९

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 एवं पंचवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे
एकवर्षीय शुल्क ₹300 एवं पंचवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹20,000)
Us Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244;** | **WhatsApp :9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरि: ॥

हम अपने चारों ओर देखते हैं कि वस्तुएँ, प्राणी, पदार्थ, विचार, भाव कुछ भी स्थायी नहीं है; सब कुछ बदल जाता है। यही संसार है। 'संसार' शब्द संस्कृतके 'सृ' धातुसे बनता है, जिसका अर्थ हुआ—सरकनेवाला। अत: अच्छा-बुरा जो कुछ भी हमें अपने भीतर और बाहर चारों ओर दिखायी देता है, उसमें कुछ भी सदा टिकनेवाला नहीं है। उसे बदल ही जाना है।

इस बदलनेवाली दुनियामें यदि कुछ नहीं बदलने-वाला तत्त्व है, तो वह आप स्वयं हो। आपका शरीर, मन, वाणी, विचार, भाव सब कुछ बचपनसे आजतक बदलते रहे हैं। आप स्वयं इस बातके साक्षी हैं। फिर इस साक्षी-स्वयंको अपनेमें देखनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह सनातन है, इसका कभी नाश नहीं होता। इसकी खोजमें लगना मनुष्य-जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम है, और सबसे सरल भी।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जैसे बरफमें केवल जल-ही-जल है, घड़ेमें मिट्टी-ही-मिट्टी है, सोनेके हारमें सोना-ही-सोना है, कपड़ेमें केवल सूत-ही-सूत है, इसी प्रकार इस चराचर जगत्‌में केवल भगवान्-ही-भगवान् हैं। भगवान्‌के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। परंतु भगवान् केवल इस जगत्‌में ही नहीं हैं, इससे परे भी हैं।

याद रखो—जल न हो तो बरफका, मिट्टी न हो तो घड़ेका, सोना न हो तो स्वर्णहारका और सूत न हो तो कपड़ेका अस्तित्व ही नहीं रहता; वैसे ही भगवान् न हों, तो जगत्‌का अस्तित्व न रहे। परंतु जैसे बरफ न होनेपर भी जल रहता है, घड़ा न होनेपर भी मिट्टी रहती है, हार न होनेपर भी सोना रहता है और कपड़ा न होनेपर भी सूत रहता है, वैसे ही जब जगत् नहीं रहता है, तब भी भगवान् तो रहते हैं।

याद रखो—अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड भगवान्‌के एक देशमें ही स्थित हैं, भगवान्‌की अनन्तताका कोई पार नहीं है।

याद रखो—जगत्‌में जैसे भगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं है, वैसे ही जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, सो सब भगवान्‌की लीला हो रही है और लीला तथा लीलामय भगवान् एक ही वस्तुतत्त्व हैं।

याद रखो—भगवान् ही सर्वमय हैं और भगवान् ही सर्वातीत हैं। भगवान् ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके रूपमें प्रकट हैं और भगवान् ही उन सबसे अलग सर्वथा रूपहीन हैं। भगवान् ही सब कुछ करते हैं और भगवान् ही सर्वथा निष्क्रिय हैं। भगवान् ही अनन्ताचिन्त्य कल्याण-गुणगण-सम्पन्न हैं और भगवान् ही सर्वथा गुणरहित हैं। इस प्रकार जो एक ही समयमें परस्पर विरोधी गुणों, रूपों तथा स्थितियोंके स्वरूपोंमें प्रकट हैं तथा सबसे सर्वथा-सर्वदा परे हैं, वे ही भगवान् हैं।

याद रखो—इन भगवान्‌को इस प्रकार समझकर जो सर्वत्र, सबमें भगवान्‌को देखकर उनकी उपासना करता है, वह तुरंत ही भगवान्‌को प्राप्त करके भगवान्‌के साथ एक हो जाता है।

याद रखो—यही भगवान् नित्य-नव-सुन्दर परम मधुर मनोहर दिव्य सच्चिदानन्द विग्रह साकार—श्रीमहाविष्णु, श्रीसदाशिव, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र आदि रूपोंमें सच्चिदानन्दमय दिव्य लोकोंमें नित्य निवास करते हैं और समय-समयपर भूतलपर अवतीर्ण होकर जगत्‌के प्राणियोंका परम कल्याण-साधन किया करते हैं। भगवान् भक्तवांछा-कल्पतरु हैं, अतएव भगवान्‌को कोई किसी भी भावसे भजे, भगवान् उसकी रुचिके तथा भावके अनुसार उसे अपनी अनुभूति कराते हैं, उसकी मनोवांछा पूर्ण करते हैं और उसकी अज्ञान-ग्रन्थियोंको तोड़कर उसे अपने दिव्य धाममें पहुँचा देते हैं।

याद रखो—भगवान्‌का दिव्य परम धाम भगवान्‌से भिन्न नहीं है। भगवान्‌का स्वरूप, भगवान्‌का नाम, भगवान्‌की लीला और भगवान्‌का धाम सब भगवद्रूप ही है। उनका परम धाम दिव्यस्थान होते हुए भी स्थान नहीं है, सच्चिदानन्द-तत्त्व है, इसी प्रकार उनका स्वरूप, उनका नाम, उनकी लीला सभी—रूप, नाम और लीलारूप होते हुए ही सच्चिदानन्द-तत्त्व हैं। उनमें भौतिकता, मायाका लेश नहीं है। वे औपाधिक, जरा-मरणशील, केवल मध्यमें व्यक्त होनेवाली वस्तु नहीं हैं, वे भगवत्स्वरूप, नित्य सत्य, देशकालातीत चिदानन्दमय हैं। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

समुद्र-मन्थनसे कामधेनुका प्राकट्य

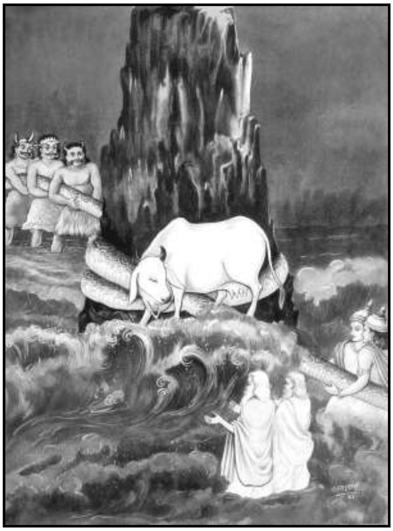

समुद्र-मन्थनके समय क्षीरसागरसे लोकोंकी मातृ-स्वरूपा कल्याणकारिणी जो पाँच गौएँ उत्पन्न हुई थीं, उनके नाम थे—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला और बहुला। ये सभी गौएँ समस्त लोकोंके कल्याण तथा देवताओंको हविष्यके द्वारा परितृप्त करनेके लिये आविर्भूत हुई थीं। फिर देवताओंने इन्हें महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित और गौतम मुनिको समर्पित किया और उन्होंने इन्हें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। ये सभी गौएँ सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली कामधेनु कही गयी हैं। गौओंसे उत्पन्न दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र और रोचना—ये छः अंग (गोषडंग) अत्यन्त पवित्र हैं और प्राणियोंके सभी पापोंको नष्टकर उन्हें शुद्ध करनेवाले हैं। श्रीसम्पन्न बिल्व वृक्ष गौओंके गोबरसे ही उत्पन्न हुआ है। यह भगवान् शिवजीको अत्यन्त प्रिय है। चूँकि उस वृक्षमें पद्महस्ता भगवती लक्ष्मी साक्षात् निवास करती हैं, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष भी कहा गया है। बादमें नीलकमल एवं रक्तकमलके बीज भी गोबरसे ही उत्पन्न हुए थे। गौओंके मस्तकसे उत्पन्न परम पवित्र 'गोरोचना' समस्त अभीष्टोंकी सिद्धि करनेवाली तथा परम मंगलदायिनी है। अत्यन्त सुगन्धित गुग्गुल नामका पदार्थ गौओंके मूत्रसे ही उत्पन्न हुआ है। यह देखनेसे भी कल्याण करता है। यह गुग्गुल सभी देवताओंका आहार है, विशेषरूपसे भगवान् शंकरका प्रिय आहार है। संसारके सभी मंगलप्रद बीज एवं सुन्दर-से-सुन्दर आहार तथा मिष्टान्न आदि सब-के-सब गौके दूधसे ही बनाये जाते हैं। सभी प्रकारकी मंगल कामनाओंको सिद्ध करनेके लिये गायका दही लोकप्रिय है। देवताओंको परम तृप्त करनेवाला अमृत नामक पदार्थ गायके घीसे ही उत्पन्न हुआ है। ब्राह्मण और गौ—ये दो नहीं हैं, अपितु एक ही कुलके दो पहलू या रूप हैं। ब्राह्मणमें तो मन्त्रोंका निवास है और गौमें हविष्य स्थित है; इन दोनोंके संयोगसे ही विष्णुस्वरूप यज्ञ सम्पन्न होता है—(**यज्ञो वै विष्णुः**)। गौओंसे ही यज्ञकी प्रवृत्ति होती है और गौओंमें सभी देवताओंका निवास है। छहों अंग—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और पद, जटा, शिखा, रेखा आदि क्रमोंके साथ सभी वेद गौओंमें ही सुप्रतिष्ठित हैं।*

---

* क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुरामृतमन्थने। पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः॥
नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला बहुला इति। एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च॥
जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठासितगौतमाः। जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सरैस्ततः॥
गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम्। षडङ्गानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च॥
गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः।
तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः। बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात्॥
गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका।
गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः। आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः॥
यद्बीजं जगत् किञ्चित् तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम्।
दधिजातानि सर्वाणि मङ्गलान्यर्थसिद्धये। घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम्॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति॥
गोषु यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः। गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः॥
(भविष्यपु०, उत्तरपर्व, अ० ६९)

पुराण-महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर

करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'**पुराणं शृणुयान्नित्यम्**'। पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न करके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं, तो यह कोई लाभकी बात नहीं है। भोगकी सामग्रियोंका भी यह लाभ नहीं है कि उनसे इन्द्रियोंको तृप्त किया जाय; जितने भोगोंसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग हमारे लिये पर्याप्त हैं तथा जीवन-निर्वाहका—जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमें लिखा है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२।६२)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अंगभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं। उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है— '**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'**शतकोटिप्रविस्तरम्।**' उसी

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥ (पद्म०स्वर्ग० ६२।६०-६१)

प्रसंगमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है, और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण एवं पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापर युगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं, स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पंचम वेद' कहा गया है—'**इतिहास-पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्**' (छान्दोग्य-उपनिषद् ७।१।२)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पंचम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें ही लिखा है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २।५०-५१)

'जो ब्राह्मण अंगों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है; उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक भी यह शंका हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शंकाका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके '**विद्यात्**' और '**विजानाति**'— इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शंका निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार— विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों)-में विशद वर्णन मिलता है, परन्तु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है। अस्तु,

---

* कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः। व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्। ....॥ (पद्म०सृष्टि० १।५१—५३)

श्रीरामचरितमानस सच्चा इतिहास है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

कहा तो जाता है कि वर्तमान युग बुद्धिप्रधान और उन्नति-सम्पन्न है, परंतु गम्भीरताके साथ विचार करनेपर पता लगता है कि बुद्धिकी जगह अश्रद्धा और अविश्वासने ले ली है और उन्नतिका स्थान कलह और द्वेषने! जहाँ अश्रद्धा और अविश्वासका विस्तार है, वहाँ हम यह कहते हैं कि यहाँ बुद्धिसे काम लिया जाता है, अविवेक या अन्ध परम्परासे नहीं; और जहाँ द्वेष और कलह है, वहाँ हम समाजमें जागृति और उन्नतिका आरोप करते हैं। इसी कारण आज हमारी वास्तविकता नष्ट हो रही है और क्रमशः हमारा जीवन कृत्रिम होता चला जा रहा है। श्रद्धा-विश्वासका तिरस्कार करके हम अपने घरमें रखे हुए पारससे लाभ नहीं उठा रहे हैं, यही विधिकी विडम्बना है। इसी कारण आज अपनी सनातन सभ्यता और इतिहासपरसे हमारी आस्था उठती चली जा रही है। अच्छे-अच्छे विद्वान् और समझदार पुरुष भी आज प्रत्येक सत्यको—यहाँतक कि ईश्वरतकको कवि-कल्पनाका स्वरूप देनेमें ही अपनी शान समझने लगे हैं। यह मानव-जातिका दुर्भाग्य है!

रामायण और महाभारतको सनातनकालसे हिन्दूजाति अपना गौरवपूर्ण इतिहास मानती चली आ रही है, परंतु आधुनिक विद्वान् उन्हें इतिहास स्वीकार करनेमें हिचकते हैं। अवश्य ही इसमें उनकी नीयत बुरी नहीं है, परंतु कालप्रभाव और अविश्वासपूर्ण वायुमण्डलका उनकी बुद्धिपर इतना गहरा असर हुआ है कि उनका लक्ष्य और उनकी विचारधाराकी गति ही पलट गयी है। इसीसे प्रत्येक बातको वे अपनी काल्पनिक कसौटीपर कसकर क्षणोंमें ही काल्पनिक करार दे डालते हैं। रामायणके सम्बन्धमें कुछ विद्वान् स्पष्टरूपसे ऐसा कहते हैं कि 'यह इतिहास नहीं है, काव्य-मात्र है। इसमें जिन पात्रोंका वर्णन है, वे या तो हुए ही नहीं, यदि हुए हैं तो इस काव्यमें उनका सर्वथा अतिरंजित रूप है। उनको केवल आधार बनाकर काव्य लिखा गया है, इतिहासके रूपमें उनके जीवनकी सत्य घटनाओंका संकलन इसमें नहीं है।' इस प्रकारके विचार रखनेवाले सज्जनोंसे यही प्रार्थना है कि वे इस विषयपर पुनः विचार करें। यदि गम्भीरताके साथ विचार करेंगे और भ्रान्त विचारधाराको शुद्ध कर सकेंगे, तो उन्हें अवश्य ही अपनी भूल प्रतीत होगी।

दूसरी श्रेणीमें कुछ सज्जन ऐसे हैं, जो वाल्मीकीय रामायणको तो इतिहास स्वीकार करते हैं, परंतु गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके रामचरितमानसको इतिहास नहीं मानते। वे उसे केवल भक्तिपूर्ण सुन्दर काव्य ही मानते हैं, परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार वाल्मीकीय रामायण सच्चा इतिहास है, उसी प्रकार तुलसीकृत रामचरितमानस भी है। इसपर कहा जा सकता है कि यदि ऐसी ही बात है, तो जगह-जगह दोनोंके वर्णनोंमें इतना भेद क्यों है? इसका उत्तर गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं ही दे दिया है—

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥
राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

'मैं जो यह नयी कथा कहता हूँ, इसको पहले (किसी भी रामायणमें) न सुना हो, तो इसे सुनकर आश्चर्य न करें। जो ज्ञानी पुरुष इस विचित्र (पहले कहीं न सुनी हुई) कथाको सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं है। उनके मनमें ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके अवतार हुए हैं और करोड़ों अपार रामायण हैं। कल्पभेदके अनुसार श्रीहरिके सुन्दर चरित्रोंको मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारसे गाया है। हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह न कीजिये और आदरसहित प्रेमसे इस

कथाको सुनिये। श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके निर्मल विचार हैं, वे इस कथाको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे।'

यह जान रखना चाहिये कि महामुनि वाल्मीकिने जिन रामकी कथाका वर्णन किया है, वे भगवान् विष्णुके अवतार हैं और गोस्वामीजीके राम समग्र ब्रह्मरूप परात्पर भगवान् हैं। उन दोनों अवतारोंकी लीलाओंमें अन्तर है और उसीके अनुसार दोनों सत्यवादी महर्षि कवियोंने उनका यथार्थ वर्णन किया है। वाल्मीकि और तुलसीदासजी कवि पीछे हैं, भगवद्भक्त महर्षि पहले। इसलिये वे मिथ्या कल्पनाको इतिहासका स्वरूप दें, ऐसा मानना भूल है। तुलसीदासजीने स्वयं अपने रामचरितमानसको 'इतिहास' कहा है—

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥

शिवजी कहते हैं—मैंने यह परम पुनीत इतिहास कहा है, इसके सुननेसे भवबन्धन छूट जाता है और प्रणतकल्पतरु करुणामय श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।

आधुनिक इतिहासोंसे हमारे इन इतिहासोंकी यही विशेषता है। आधुनिक इतिहासोंके पढ़नेसे केवल घटनाओंका और तारीख-सनोंका ही पता लगता है और प्रायः वे इतिहास किसी-न-किसी सम्पर्कयुक्त व्यक्तिके लिखे होनेसे सर्वथा सत्य भी नहीं होते, परंतु हमारे रामायण-महाभारतादि इतिहास ब्रह्मज्ञानी, भगवद्भक्त, स्वाभाविक ही सदाचार-परायण, सत्यवादी ऋषियोंके लिखे होनेके साथ ही वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके उपदेशोंसे समन्वित होनेके कारण पढ़नेवालोंको भवपाशसे मुक्तकर उन्हें भगवान्‌का परम प्रेम प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। काव्यकलाका विशेष आनन्द तो घलुएमें मिल जाता है। इसीसे हमारे इतिहासका लक्षण है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

'जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उपदेशोंसे समन्वित और प्राचीन (सत्य) घटनाओंसे युक्त हो, उसे इतिहास कहते हैं।'

श्रीरामचरितमानस भी ऐसा सत्य घटनाओंसे पूर्ण इतिहास है। इसमें महाकाव्यका रस भरा है, यह इसकी विशेषता है और तमाम दुःखोंका नाश करके परमानन्द और परम शान्तिकी प्राप्तिके साथ ही परात्पर श्रीभगवान्‌के ज्ञान, दर्शन और प्रेमको अनायास ही प्राप्त करा देना इसका सुन्दर फल है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र—सर्वमान्य आदर्श

सम्पूर्ण भारतीय समाजके लिये समान आदर्शके रूपमें भगवान् रामचन्द्रको उत्तरसे लेकर दक्षिणतक सब लोगोंने स्वीकार किया है। उत्तरमें गुरु गोविन्दसिंहजीने रामकथा लिखी है, पूर्वकी ओर 'कृत्तिवासरामायण' चलती है, महाराष्ट्रमें 'भावार्थरामायण' चलती है, हिंदीमें गोस्वामीजीकी रामायण 'श्रीरामचरितमानस' सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। सुदूर दक्षिणमें महाकवि कम्बनद्वारा लिखित 'कम्बरामायण' अत्यन्त भक्तिपूर्ण सरस ग्रन्थ है। मनुष्यके जीवनमें आनेवाले सभी सम्बन्धोंको पूर्ण एवं उत्तमरूपसे निभानेकी शिक्षा देनेवाला प्रभु रामचन्द्रके चरित्रके समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। उनका पराक्रम समग्र भारतकी एकताका प्रत्यक्ष चित्र है। आदिकविने उनके सम्बन्धमें कहा है कि वे गाम्भीर्यमें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान हैं—'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।' **इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करके मानो उन्होंने हम सबके सामने वह बात रखी कि 'आसेतु हिमाचल' भारतके लिये प्रभु श्रीराम ही आदर्श हैं। उत्तरसे लेकर दक्षिणतक भिन्न-भिन्न भाषाओंके सभी महाकवियोंने इस आदर्शको स्वीकार करके तथा उस महापुरुषके चरित्रका गान करके हमलोगोंको धर्मके मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित किया है।**—परमपूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

धीर, वीर और गम्भीर

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

❀ जिसके मनमें विधानका अर्थात् कर्तव्यका पूरा-पूरा आदर हो, अपने सिद्धान्तसे कभी विचलित न हो, अपने लक्ष्यपर दृढ़ रहे, वह धीर है अर्थात् विवेकशील और धैर्ययुक्त मनुष्य ही धीर कहा जाता है।

❀ जो किसीकी ओर आकर्षित न हो, किंतु अपने प्रतिपक्षीको भी अपनी ओर आकर्षित कर सके। अपना भाव प्रकट न करे। हरेक काम गहराईसे सोचकर करे, वह गम्भीर कहा जाता है।

❀ भाव यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिका आक्रमण जिसको पराजित न कर सके एवं सुख-दुःखका आक्रमण जिसपर अपना प्रभाव नहीं कर सके, वही वीर, धीर और गम्भीर है। धीरता और गम्भीरतासे रहित वीरता उस वीरका विनाश कर देती है। उस वीरको खा जाती है। उसकी वीरताका विकास नहीं हो पाता।

❀ धीर मनुष्य यदि अपने विरोधीपर विजय प्राप्त कर लेता है, तो भी उसपर क्रोध नहीं करता। धैर्यपूर्वक कर्तव्यका पालन करता है। जिसपर हर्ष और विषाद दोनों अपना प्रभाव नहीं दिखला सकते, वही धीर है।

❀ पशु-बलका समर्थक कभी वीर नहीं हो सकता। जो वीर निर्बलोंके दुःखका कारण होता है, वह वीर नहीं है। वीर तो वही है, जो निर्बलोंकी रक्षा करे। अपनेसे निर्बलोंको दुःख देनेके लिये तो खूँखार शेर भी वीर होता है, परंतु उसमें धीरता और गम्भीरता नहीं होती।

❀ इन्द्रिय-जय, सेवा तथा सत्यकी खोज—ये तीनों गुण गाँधीजीमें थे। इसलिये वे वीर थे। जिसको कोई सम्मान, अधिकार आदिके लोभसे या किसी प्रकारके भयसे बदल न सके, जिसपर किसी प्रकारका मोह अपना प्रभाव नहीं जमा सके, जो सब प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करते हुए अविचल रहे, वह वीर, धीर और गम्भीर कहा जा सकता है। जो पशुबलके द्वारा अधिकार प्राप्त करके निर्बलोंको सताते हैं, दूसरोंकी माँ-बहिनोंकी इज्जत बर्बाद करते हैं, अल्पसामर्थ्यवालोंके साथ बुरा व्यवहार करते हैं, सम्प्रदायके अभिमानमें आकर भिन्न सम्प्रदायपर अत्याचार करते हैं, वे वीर नहीं कहे जा सकते। अतः यदि कोई यह समझे कि मुसलमानोंको मारनेवाला हिन्दू वीर है या हिन्दुओंको मारनेवाला मुसलमान वीर है, तो उसकी भूल है। यदि मारनेवाला ही वीर माना जाय, तब तो एक एटम बमको सबसे अधिक वीर मानना चाहिये, परंतु ये वीरताके लक्षण नहीं हैं।

❀ जो वीर बनना पसन्द करे, उसे चाहिये कि मातृशक्तिका अर्थात् स्त्री-जातिका खूब आदर करे। हर प्रकारसे उसकी रक्षा करे। अपने जीवनमें असावधानी न आने दे। जबतक प्राण रहे तबतक अपने सत्यपर डटा रहे, विचलित न हो।

❀ जो दूसरेके हृदय, मन और बुद्धिपर विजय प्राप्त कर ले, वही वास्तवमें वीर है। ऐसा वीर वही हो सकता है, जिसका विवेक और विश्वास ही जीवन बन गया है। जिसके जीवनमें पराजयका नाम-निशान भी नहीं रहा है।

❀ जिसकी भावना, चरित्र, विश्वास, विवेक, संकल्प और पराक्रम सब-के-सब एक होकर जीवन बन जायँ, वही वीर कहलानेयोग्य है। ऐसा वीर एक दुर्बल मनुष्य भी बन सकता है। वीरताके लिये शरीरके बलकी आवश्यकता नहीं है।

❀ अर्जुन जब स्वर्गमें गया था, तब उर्वशीको क्या उत्तर दिया था? माता! आप मुझे ही पुत्र समझ लो। मैं आपको मेरे-जैसा दूसरा पुत्र देनेमें समर्थ नहीं हूँ। अनेक प्रकारसे प्रलोभन देने और भय दिखलानेपर भी अर्जुनने उर्वशीका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। यह है वीरताका नमूना।

❀ जो अपनेपर नेतृत्व कर सके, जो बुद्धिका, धर्मका और विश्वासका अपराधी न हो, अपनेसे दुखियोंका दुःख सहन न कर सके, वह उदार मनुष्य ही सच्चा वीर है।

साधकोंके प्रति—

संघर्षका कारण

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आजकल ऐसा प्रचार किया जाता है कि जातिभेदके कारण ही समाजमें संघर्ष होता है, अत: जातिभेदको नहीं मानना चाहिये। यह बिलकुल गलत मान्यता है। वास्तवमें संघर्ष जातिको लेकर नहीं होता, प्रत्युत अहंकारसे पैदा होनेवाले स्वार्थ और अभिमानको लेकर होता है।

सृष्टिमें जातिभेद स्वाभाविक है। विभिन्न देशोंमें मनुष्योंकी अनेक जातियाँ विद्यमान हैं। केवल मनुष्यमें ही नहीं, प्रत्युत पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदिमें भी जातिभेद स्वाभाविक विद्यमान है। गाय, भैंस, भेंड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, कुत्ता आदिकी अनेक जातियाँ हैं और उनकी एक-एक जातिमें भी अनेक भेद हैं। जातिसे ही उनके गुणोंकी पहचान होती है। इनका क्रय-विक्रय करनेवाले लोग इनकी जातियोंसे भलीभाँति परिचित होते हैं। जातिको देखकर ही इनका मूल्य लगाया जाता है। ऐसे ही वृक्षोंमें भी एक-एक वृक्षकी अनेक जातियाँ होती हैं। फलों तथा सब्जियोंमें और अनाजोंमें भी अनेक जातियाँ होती हैं। इस जातिभेदका कारण यह है कि सृष्टि विषम है और इसमें एक समान दीखनेवाली दो चीजें भी वास्तवमें समान नहीं होतीं। अत: वैरका कारण जाति नहीं है। स्वार्थ और अभिमानको लेकर ही वैर पैदा होता है, जो कि आसुरी सम्पत्ति है।

एक बात यह भी देखनेमें आती है कि अलग-अलग जातिमें परस्पर लड़ाई या वैर नहीं होता, प्रत्युत एक ही जातिमें परस्पर स्वार्थ और अभिमानको लेकर वैर होता है। जैसे, पुरुष जातिका पुरुष जातिसे और स्त्री जातिका स्त्रीजातिसे वैर होता है। पशुओंमें भी नरकी लड़ाई नरसे और मादाकी लड़ाई मादासे होती है। जैसे, कुत्ता कुत्तासे ही लड़ता है और कुतिया कुतियासे ही लड़ती है, दूसरा इस लड़ाईमें सहायकमात्र होता है। बन्दरोंमें भी बँदरियोंके समूहमें एक बन्दर होता है। अगर किसी बँदरीका नर बच्चा पैदा होता है, तो वह उसको लेकर भाग जाती है; क्योंकि अपने भोगका स्वार्थ रहनेसे बन्दर उस नर बच्चेको मार डालता है! परंतु मादा बच्चा पैदा होनेपर वह उसको नहीं मारता। यही बात कुत्तोंमें भी पायी जाती है। नर बच्चा पैदा हो तो उसको कुत्ता मार देता है और मादा बच्चा पैदा हो तो उसको कुतिया मार देती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके बीच परस्पर लड़ाई या वैर नहीं होता। ब्राह्मणका ब्राह्मणसे, क्षत्रियका क्षत्रियसे, वैश्यका वैश्यसे और शूद्रका शूद्रसे वैर होता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ एक जीविका होती है, वहीं स्वार्थवश लड़ाई होती है। अगर सब काममें सबका अधिकार मान लिया जाय तो इससे संघर्ष बहुत ज्यादा बढ़ेगा। कारण कि ऐसा माननेसे जिस जीविकासे अधिक रुपये, मान-बड़ाई आदि प्राप्त होते हों, उसको सब करने लगेंगे और जिस जीविकामें रुपये, मान-बड़ाई आदि कम प्राप्त होते हों, उसको कोई नहीं करेगा। ऊँचा काम सब करना चाहेंगे, पर नीचा काम कोई करना नहीं चाहेगा। जैसे, पहले राज्यके लिये केवल राजपूत ही लड़ते थे, पर अब राज्यके लिये सभी लड़ते हैं। पहले चारों वर्ण अपना-अपना कार्य करते थे, पर अब चारों वर्णोंके कामोंमें सबका अधिकार होनेसे संघर्ष भी कम-से-कम सोलह गुना तो बढ़ेगा ही। पहले लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रमकी मर्यादामें चलते थे और सुख-शान्तिपूर्वक रहते थे। परंतु आज वर्णाश्रमकी मर्यादाको मिटाकर स्वार्थवश अनेक पार्टियाँ बन रही हैं, जो राज्यके लिये आपसमें लड़ती हैं। दूसरे सम्प्रदायवालोंके वोटके लिये हिन्दू ही हिन्दुओंका नाश कर रहे हैं। माँ, बाप और बेटा—तीनों अलग-अलग पार्टियोंको वोट देते हैं और घरमें लड़ते हैं। प्रचार तो यह किया जाता है कि सबमें परस्पर एकता होनी चाहिये, पर वास्तवमें एक-एकता हो रही है अर्थात् माँ अलग, बाप अलग, पत्नी अलग, बेटा अलग, भाई अलग—सब एक-एक हो रहे हैं। कारण यह है कि वर्णाश्रमकी रचना तो मर्यादा, कर्तव्यको लेकर हुई थी, पर पार्टियोंकी रचना

स्वार्थको लेकर हुई है।

स्वार्थ और अभिमानके कारण ही विभिन्न वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिके मनुष्योंमें अपने वर्ण आदिका पक्षपात रहता है, जिससे वे अपने वर्ण आदिका मण्डन और दूसरे वर्ण आदिका खण्डन करते हैं। इस विषयमें एक कहानी है। एक वेश्या थी। उसके मनमें विचार आया कि मेरा कल्याण कैसे हो? अपने कल्याणके लिये वह साधुओंके पास गयी। उन्होंने कहा कि तुम साधुओंका संग करो। साधु त्यागी होते हैं, इसलिये उनकी सेवा करो तो कल्याण होगा। फिर वह ब्राह्मणोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि साधु तो बनावटी हैं, पर हम जन्मसे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण सबका गुरु होता है। अतः तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो तो कल्याण होगा। इसके बाद वह संन्यासियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि संन्यासी सब वर्णोंका गुरु होता है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे कल्याण होगा। फिर वह वैरागियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि वैरागी सबसे तेज होता है; अतः उसकी सेवा करो तो कल्याण होगा। फिर वह अलग-अलग सम्प्रदायोंके गुरुओंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि हम सबसे ऊँचे हैं, शेष सब पाखण्डी हैं। तुम हमारी चेली बन जाओ, हमारेसे मन्त्र लो, तब हम वह बात बतायेंगे, जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा। इस प्रकार वह वेश्या जहाँ भी गयी, वहीं उसको अपने-अपने वर्ण, आश्रम, मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात दिखायी दिया। यह देखकर उसके मनमें आया कि अब तत्त्व समझमें आ गया। युक्ति हाथ लग गयी! साधु कहते हैं कि साधुओंको पूजो, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मणोंको पूजो, तो हम क्यों न वेश्याओंको पूजें! ऐसा सोचकर उसने वेश्याभोज करनेका विचार किया। उसमें सब वेश्याओंको निमन्त्रण दिया। निश्चित समयपर सब वेश्याएँ वहाँ आने लगीं।

उस गाँवके बाहर एक विरक्त, त्यागी सन्त रहते थे। उन्होंने देखा तो विचार किया कि आज क्या बात है? जब उनको मालूम हुआ कि आज वेश्याभोज हो रहा है, तो वे वेश्याको क्रियात्मक शिक्षा देनेके लिये वहाँ पहुँच गये। रसोई बन रही थी। रसोई बनानेवालोंने पकाये हुए चावलोंका पानी (माँड़) नालीमें गिराया। वेश्या छतपर खड़ी होकर जिधर देख रही थी, उधर बाबाजी बैठ गये और उस माँड़से हाथ धोने लगे। वेश्याने देखा तो बोली कि बाबाजी, यह क्या कर रहे हो? बाबाजीने कहा कि तू अन्धी है क्या? तेरेको दिखायी नहीं देता, मैं तो अपने हाथ धो रहा हूँ। वेश्याने बाबाजीको ऐसा करनेसे रोका तो वे माने नहीं। वेश्या उतरकर नीचे आयी और बोली कि बाबाजी, यह चावलोंका पानी है, इससे तो हाथ और मैले होंगे! आप साफ पानीसे हाथ धोओ। बाबाजीने कहा कि अगर इससे हाथ मैले हो जायँगे तो क्या वेश्याएँ ज्यादा साफ, निर्मल हैं, जिससे इनकी सेवासे कल्याण हो जायगा? हाथ मैले पानीसे साफ होते हैं या साफ पानीसे? यह सुनकर वेश्याको होश आया कि बाबाजी बात तो ठीक कहते हैं। तो फिर कल्याण कैसे होगा? बाबाजी बोले—जिस सन्तमें किसी मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात, आग्रह न हो, जिसके आचरण शुद्ध हों, जिसके भीतर एक ही भाव हो कि जीवका कल्याण कैसे हो, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो—वह सन्त चाहे स्त्री हो या पुरुष, साधु हो या ब्राह्मण, किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिका क्यों न हो, उस सन्तका संग करो, उसकी बातें सुनो तो कल्याण होगा।

तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ स्वार्थ और अभिमान होगा, भोग और संग्रहकी इच्छा होगी, वहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी ही। जहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी, वहाँ शान्ति नहीं रहेगी, प्रत्युत अशान्ति होगी, संघर्ष होगा, पतन होगा।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

'काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके दरवाजे जीवात्माका पतन करनेवाले हैं, इसलिये इन तीनोंका त्याग कर देना चाहिये।'

माधवका जीवनदर्शन

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'माधव' शब्द 'मधु' शब्दमें 'अण्' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं—'मधुकी तरह मीठा, शहदसे बना हुआ, वासन्ती, वैशाखमास, इन्द्रका नाम, परशुरामका नाम और मायणका पुत्र, एक प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ता आदि।'*

प्रकृत प्रसंगमें 'माधव' शब्द भगवान् श्रीकृष्णके अर्थमें ग्राह्य है, क्योंकि भगवान्ने अपनी बाल्यावस्था और किशोरावस्थामें व्रजके अन्तर्गत ढेर सारी लीलाएँ कीं, जिनके द्वारा न केवल व्रजका परिवेश पवित्र बना रहा, प्रत्युत आपके लोकमंगलात्मक कार्योंसे कंस, बकासुर, शकटासुर, चाणूर, मुष्टिक आदि लोकद्वेषी असुरोंका संहार भी हुआ। जरासन्ध, दन्तवक्र और शिशुपालसदृश अत्याचारी राजाओंका विनाश हुआ तथा यहीं रहकर लोगोंको अपने अन्यान्य अवतारोंके माध्यमसे आपने विविध जन्मोंमें प्रदत्त वरदानोंको पूर्णता प्रदान की। कालिया नाग एवं इन्द्रके अभिमानको समाप्तकर क्रमशः आपने यमुना-जलको विषादि प्रदूषणोंसे मुक्त किया तथा गोवर्धनको सात दिनोंतक धारण भी किया। इसके अतिरिक्त शरद्पूर्णिमाकी रात्रिमें महारासका आयोजन, गोचारण, श्रीराधा एवं गोपियोंके साथ महाभावात्मक रास, माखन-चोरी, गोप-बन्धुओंसे मित्रता, वसुदेव-देवकीकी रक्षा, अनेक बालसुलभ क्रीड़ाएँ, असंख्य चमत्कार, माता यशोदाको अपने मुखमें ब्रह्माण्डदर्शन, मिट्टीभक्षण तथा निर्दयी कंसको दूध-दही पहुँचानेवाली गोपांगनाओंके घड़ोंको तोड़ देने-सदृश असंख्य कार्य करके भगवान्ने अपने माधव होनेका परिचय दिया। आपको गीतामें '**ऋतूनां कुसुमाकरः**' भी कहा गया है। एतावता जिस प्रकार वसन्तऋतुमें सम्पूर्ण जड़चेतनात्मक जगत् आह्लादित हो जाता है, उसी प्रकार आपने अपने जीवनके ग्यारह वर्षोंकी वयके पूर्व ही लोक-कल्याणके ऐसे अनेक अद्भुत कार्य कर दिखाये, जो अन्य किसीके द्वारा सम्भव नहीं थे। आपने व्रजमें जहाँ एक ओर सात्त्विक प्रेम, कर्मयोग, साहस, शत्रुविनाश, लोकोपकार, पर्यावरणशुद्धि, जलक्रीड़ा, गोरक्षा, मातृ-पितृ-सम्मान, मैत्री, सखास्नेह, रास-महारास, वृक्षोंकी रक्षा, अन्याय और शोषणका विरोध, संगठननिर्माण, स्वास्थ्यरक्षा, सात्त्विक आहार, श्रद्धा, निष्ठा, भूमि, पर्वत, नदी, वनस्पति, सभीके साथ सौहार्द, निर्भीकता, सरलता, सहजता और समर्पणका आदर्श प्रस्तुत किया, वहीं लोक-कल्याण करते हुए भावी पीढ़ीके बालकोंको धैर्य, साहस, स्नेह, धर्म, संस्कार और सांस्कृतिक सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये प्रेरणा भी प्रदान की।

इस प्रकार संसारको पीड़ा पहुँचानेवाले जरासन्ध, शिशुपाल, दन्तवक्र, और कालयवनसदृश विकराल राक्षसोंको विनष्ट करते हुए आपने युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ब्राह्मणोंका पादप्रक्षालन किया और मित्र सुदामाके दारिद्र्यको भी दूर किया। विश्वकर्माके सहयोगसे नूतन द्वारकाका निर्माण, द्वारकाधीशके रूपमें आपद्वारा कृत प्रजापालन, कुशल प्रशासन तथा महाभारत-युद्धका संचालन आदि कार्य विश्वके इतिहासमें पत्थरकी लकीर हैं। यद्यपि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी और पाण्डवोंके पास मात्र सात अक्षौहिणी सैन्यदल था, साथ ही महाभारत-युद्धमें आपकी शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा थी, किंतु अर्जुनके साथ सारथीके रूपमें रहकर आपने पाण्डवोंको विजय दिलायी तथा युद्धके श्रीगणेशकालमें श्रीमद्भगवद्गीताका जो उपदेश अर्जुनको दिया, वह विश्वके प्रत्येक चिन्तकके कण्ठमें मोतियोंकी मालाकी भाँति सहस्रों वर्षोंसे विराजमान है; क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता जीवनकी अतिविषम परिस्थितिमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा दिये गये उपदेशोंका संग्रह है, जो विश्वके द्विधाग्रस्त, संशयापन्न एवं किंकर्तव्यविमूढ़ताके चौराहेपर खड़े प्रत्येक अर्जुनके लिये मार्गदर्शक है। यह कृति महाभारतकालमें जितनी प्रासंगिक और उपयोगी रही होगी, आज उसकी प्रासंगिकता रंचमात्र भी कम नहीं

* संस्कृत-हिन्दी-कोश पृष्ठ ७९३, वामनशिवराम आप्टे, द्वितीय संस्करण।

हुई है और न भविष्यमें कभी कम होनेवाली है। ज्ञान, भक्ति और कर्मयोगकी त्रिवेणीरूप यह ज्ञानमंजूषा असंख्य सूक्तियों, व्यावहारिक निर्देशों, आध्यात्मिक विषयों तथा ऐतिहासिक तथ्योंकी प्रतिपादिका है।

पार्थसारथिके मुखारविन्दसे निःसृत यह पीयूषवाग्धारा एक ओर जहाँ राजनीति, समाजशास्त्र, लोकजीवन, सांख्य-योग-वेदान्तादि दर्शन, मनोविज्ञान, नैतिकता, भक्ति, राष्ट्रीयता आदिसे समन्वित और साधकोंके लिये उपयोगी है, वहीं प्रत्येक उद्यमशील, तपस्वी, बाल-युवा-युवती-वृद्ध, भगवत्प्रेमी, सामान्यजनके लिये भी उपादेय है। इसीलिये समूचे महाभारतमें अनेक गीताओंके होते हुए भी पद्मनाभके मुखसे अवतरित शब्दराशि ही लोकमें गीता मानी जाती है। यह जन-जनका कण्ठहार है और लोकमंगलकी कामनासे मानवजगत्के लिये प्रभुप्रदत्त उपहार है, जिसमें माधवको असंख्य रूपोंमें देखा जा सकता है; क्योंकि यहाँ एक तरफ आप ज्ञानी हैं तो दूसरी ओर कर्मयोगी हैं, तथा भक्तियोगके पक्षधर भी हैं।

सामान्यतः आपके स्वरूपको जानना, समझना सरल नहीं हैं; क्योंकि इस भौतिक शरीरके द्वारा अलौकिक स्रष्टाका ज्ञान गुरुकी कृपासे ही सम्भव है। वह भी या तो समर्थ आध्यात्मिक गुरुकी कृपा हो अथवा स्वयं प्रभुकी अहैतुकी अनुकम्पा हो, जैसा कि आपकी अर्जुनपर हुई थी। आप तो भगवान् भी हैं और जगद्गुरु भी हैं **'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'**। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार भगवान्के जन्म और कर्म सभी अलौकिक हैं। उन्हें सरलतासे भला कौन जान सकता है? इस ज्ञानके लिये दिव्यदृष्टिकी आवश्यकता है। जब आत्मज्ञानकी ज्योतिसे अज्ञानका आवरण सर्वथा समाप्त हो जाता है, कर्मके बन्धन विशीर्ण हो जाते हैं और हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है, तब सभी संशयादि दूर हो जाते हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

भगवान् अर्जुनसे स्वयं कहते हैं कि मैं और मेरी दृष्टि दोनों दिव्य हैं और तुम्हारी दिव्य नहीं है। इसलिये मैं जन्म-जन्मान्तरको जानता हूँ, तुम नहीं जानते। यथा—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥

(गीता ४। ५)

मुझे कर्मोंके बन्धन प्रभावित नहीं करते, अन्योंको करते हैं—मुझे कर्मफलके प्रति कोई स्पृहा नहीं है, जबकि लौकिक जनोंको स्पृहा होती है। यथा—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

किंतु जिसे सम्यक्तया ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है और वह मेरे स्वरूपको जान लेता है, उसे कर्मोंके बन्धन प्रभावित नहीं करते **(इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते)**। सभी कर्मोंको प्रभुके प्रति समर्पित व्यक्ति जब अनासक्त होकर करता है, तब कर्मोंको करते हुए भी उनसे वैसे ही प्रभावित नहीं होता, जैसे जलमें रहकर कोई कमलपत्र जलसे प्रभावित नहीं होता है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

(गीता ५। १०)

आगे अन्यत्र ऐसा भी कहा गया है कि संसारमें ज्ञानसे बढ़कर कोई और वस्तु नहीं होती। एतावता ज्ञानकी असिद्वारा ही अज्ञानजात संशयको छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। संशयके बन्धनोंको निर्मूल करनेका इसके अतिरिक्त अन्य कोई समुचित और अचूक मार्ग नहीं है—**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**। संशयात्मा जनको श्रद्धा और ज्ञानके अभावमें कभी आत्मज्ञानरूपी सुख नहीं मिलता। यथा—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

(गीता ४। ४०)

इसलिये अपने दिव्य स्वरूपको संसारकी विभिन्न वस्तुओंमें व्याप्त बताते हुए माधव कहते हैं कि—हे अर्जुन! तुम अपने नेत्रोंसे मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकते। इसलिये मैं आपको दिव्यदर्शनहेतु दिव्यदृष्टि दे रहा हूँ—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥
× × ×
तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥

(गीता ११। ८—१३)

फलतः दिव्य दृष्टिके द्वारा अर्जुनको प्रभुके विश्वरूपका दर्शन हुआ, जिसका वर्णन भगवान् वेदव्यासने गीताके ११ वें अध्यायमें अति मनोरम रीतिसे किया है। तदनुसार यदि आप चराचर लोकके पिता, अनादि, अनन्त, अक्षर, अव्यय, शाश्वत धर्मगोप्ता, सनातनपुरुष, काल, अनन्तवीर्य, अनन्तबाहु, बहुवक्त्रनेत्र, बहुबाहूरुपाद, बहूदर, जगन्निवास, हृषीकेश, पुराणपुरुष, आदिदेव, अनन्तरूप, श्रेष्ठगुरु, अप्रमेय, अप्रतिमप्रभाव, अच्युत, किरीटी, चक्री, विश्वमूर्ति, सहस्रबाहु, सर्वपालक, अचिन्त्य, ध्रुव, अचल और अव्यक्त हैं, तो दूसरी ओर महाभारतमें आये वर्णनोंके अनुसार अपने सामान्य जीवनमें कहीं आप द्रौपदीकी प्रतिष्ठाके रक्षक, पाण्डवोंके सन्धिप्रस्तावके राजदूत, विदुरानीद्वारा निर्मित श्रद्धापूर्ण भोजनके प्रशंसक, भक्तकी रक्षाहेतु और अन्यायके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करनेवाले, हजारों रानियोंकी प्रतिष्ठाके रक्षाहेतु उन्हें कारागारसे मुक्त करानेवाले, भक्त सुदामाके दारिद्र्यविनाशक, नृत्य-सौन्दर्य, और वंशीवादनमें सर्वशिरोमणि, कर्म-अकर्म और विकर्मके ज्ञाता, स्थितप्रज्ञ और स्थितधीःके लक्षणोपदेशक, सभीके शरण्य, अनुपमेय प्रेमी, अप्रतिम योद्धा, नीतिविशारद, षोडशकलासम्पन्न, उत्तम शिष्य, और उत्तम गुरु तथा सर्वव्यापक सार्वजनीन भी हैं। आप सभीमें अनुस्यूत, कारणोंके कारण एवं सर्वातीत परब्रह्म हैं। ब्रह्मसंहितामें कहा गया है कि—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

बृहदारण्यकोपनिषद् (२। ३। १)-में आपके दो रूपोंका वर्णन प्राप्त होता है। यथा—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च।

पुराकालसे ही सनातन ब्रह्मरूप आपको अनेक रूपोंमें बताया गया है—

एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।

और आपके सभी रूप पूर्ण, सर्वग, नित्य, शाश्वत और विभु कहे गये हैं। आप स्वरूपभूत, जन्म-मरणसे रहित, परमानन्दसन्दोह, बहुगुणोपेत, सर्वदोषमुक्त एवं ज्ञानैकस्वरूप हैं। यथा—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥
परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥

किंतु लीलाकी आवश्यकताके अनुरूप प्रभुके स्वरूपोंमें शक्तिका विकास अल्पाधिक होता रहता है। इसलिये अन्य स्वरूपोंको शक्तिके विकासके आधारपर परब्रह्म और ब्रह्म आदि संज्ञाएँ दी जाती हैं। भगवान् श्रीकृष्णको **कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्** कहा गया है; क्योंकि उनमें भगवान्‌के सभी लक्षण विद्यमान हैं। नित्य, सत्य, चिदानन्द, प्रेमरसविग्रह, निखिलविश्वेश्वर, प्रभु श्रीकृष्णकी अनन्त लीलाएँ हैं, जिन्हें पूर्णतया कह पाना कठिन है—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।

और यदि कहनेका प्रयत्न भी किया जाय तो आपके अनन्त जीवनदर्शनको वाग्विषय बनानेके पूर्व उसका सम्यगवबोध आवश्यक है, जो सामान्य बुद्धिका प्रतिपाद्य नहीं बन सकता। यदि इसके बावजूद प्रस्तुतिका प्रयत्न किया जाय तो गोस्वामी तुलसीदासजीकी निम्नलिखित पंक्ति गतार्थ होने लगेगी—

सो मो सन कहि जात न कैसें।
साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

क्योंकि—

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

श्रीहनुमान-चालीसा-चिन्तन

(पं० श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)

संतत वन्दनीय संतप्रवर गोस्वामी तुलसीदासद्वारा विरचित श्रीहनुमान-चालीसा एक परम सिद्धिदायक स्तवन है। मानवकी समस्त मनोकामनाओंकी सम्पूर्ति करानेवाला और मारुतिनन्दन एवं उनके परम आराध्य भगवान् श्रीरामकी अहैतुकी कृपाका प्रदाता है।

इसके आरम्भ और अन्तमें दोहा छन्द हैं और मध्यमें चालीस चौपाइयाँ हैं, मानो दो पावन तटोंके मध्य प्रवहमान पतित-पावनी भगवती भक्ति-भागीरथी ही इस रूपमें प्रकट हुई हों।

इन चौपाइयोंमें श्रीहनुमान्‌जीका शौर्य, पराक्रम एवं सामर्थ्यके साथ अपने परमाराध्य मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके प्रति सच्ची निष्ठा, सेवा, समर्पण और तादात्म्य वर्णित हुआ है। श्रीहनुमान-चालीसा सनातन धर्मके प्राय: सभी मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों एवं भक्ति-परम्पराओंमें ग्रहीत है, स्वीकार्य है; अत: सर्वमान्य है।

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।

श्रीहनुमान्‌जी ज्ञान-गुण-सागर—'**ज्ञानिनामग्रगण्यम्**' हैं। वे कपीश '**वानराणामधीशम्**' हैं, अतुलित बलधाम और जितेन्द्रिय हैं। बाह्य शत्रुओंको जीते वह वीर और जो अन्त:शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे वह महावीर, अत: उन्हें '***महावीर बिक्रम बजरंगी***' कहा जाता है। वे कपीश होते हुए भी रामदूत हैं। स्वामी भी और सेवक भी। वे क्लेशहारी, बल-बुद्धि और विद्याके प्रदाता हैं—'***बल बुधि बिद्या देहु मोहि हरहु कलेस बिकार।***' बल अर्थात् शक्ति जिसकी अधिष्ठातृ माँ दुर्गा हैं। बुद्धिके प्रदाता गजानन-गणेश और विद्याकी देवी माँ सरस्वती हैं और इन तीनोंका वरदान, शक्ति एवं सामर्थ्य श्रीहनुमान्‌जीमें ही पुंजीभूत हैं।

श्रीहनुमान-चालीसाका आरम्भ '***जय***' शब्दसे हुआ है '***जय हनुमान ज्ञान गुन सागर***' और समापन भी '***जै जै जै हनुमान गोसाईं***' से हुआ है। अत: यह जय आदि और जय अन्तवाली रचना है। अन्तिम तीन चौपाइयाँ विधि तथा फलश्रुतिसे सम्बन्धित हैं। आदिमें जय और अन्तमें भी जय सर्वविधि जयप्रदाता है। उनके एक हाथमें वज्र और दूसरे हाथमें ध्वजा है। वज्र संहारक है, मारक है और ध्वजा विजयका प्रतीक है।

श्रीहनुमान्‌जी जहाँ '***कनक भूधराकार सरीरा हैं***', तो वे कंचनवर्णी भी हैं। जहाँ वे ***किएहु कुबेसु*** हैं तो वे ***सुबेसा*** भी हैं। और तो और कुंचित केश अर्थात् घुँघराली अलकावलिवाले भी हैं। यह वर्णन उनके सौन्दर्यस्वरूपका दिग्दर्शन कराता हुआ प्रतीत होता है। कदाचित् किसी कपि स्वरूपके कायकलेवरकी ऐसी कमनीयता उनकी दिव्यताका ज्ञान कराती है।

वे विद्यावान्, गुणी और चतुर हैं। जीवनमें सफलता इन तीनोंपर ही निर्भर करती है। विद्याके साथ गुण और गुणोंके साथ चतुराई भी अनिवार्य है। विद्या सैद्धान्तिक पक्ष है, गुण क्रियात्मक और चतुराई उनका प्रयोगात्मक पक्ष है। चतुरता अर्थात् कार्याकार्यविवेक। सही समयपर उचित कार्य अर्थात् प्रत्युत्पन्नमतित्व। पंचतन्त्रमें शशक-सिंह-कथामें एक शशकद्वारा सिंहको पराजित कर देना इसी प्रत्युत्पन्नमतित्वका उदाहरण है। श्रीहनुमान्‌जीमें इस गुणके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

श्रीहनुमान-चालीसामें त्रिकयोग (तीनका संयोग) प्राय: देखनेको मिला है, जहाँ वे बल, बुद्धि और विद्याके प्रदाता हैं, वहीं वे विद्यावान्, गुणी अरु चातुर भी हैं। वे '***सीताराम लखन मन बसिया***' हैं, तो लंकापुरीमें उनके तीन रूप प्रकट हुए हैं सूक्ष्म, विराट् और भीम। '***सूक्ष्म रूप धरि सियहि दिखावा***' तो '***बिकट रूप धरि लंक जरावा***' और '***भीम रूप धरि असुर सँहारे***' और इसके माध्यमसे '***रामचंद्र के काज सँवारे।***' वे **अणोरणीयान्** और **महतो महीयान्** भी हैं। उन्होंने समयानुसार तीन वस्तुएँ मुखमें धारण कीं—सूर्य, प्रभुमुद्रिका और राम नाम। सूर्यको उन्होंने '***लील्यो ताँहि मधुर फल जानी***', मुद्रिकाको '***प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माँही***' (हनुमान-चालीसा) और '***सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥***' (रा०च०मा०)। यह चालीसा प्रमुख रूपसे

संकटहारी सिद्ध होता है। इसमें भी तीन योग हैं—

१. वे संकट काटनेवाले हैं—***'संकट कटै मिटै सब पीरा।'*** (सामान्य संकट आनेपर)

२. वे संकटसे छुड़ाते हैं—***'संकट तें हनुमान छुड़ावैं।'*** (चारों ओर संकटग्रस्त होनेपर)

३. वे संकट हरते हैं—***'पवनतनय संकट हरण'*** (संकट आ ही नहीं पाता)

ये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है कि श्रीहनुमान्‌जीने पातालमें पैठकर अहिरावणका संहार किया, आकाशमार्गसे सिया सुधि लेने गये। संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणजीके प्राणोंकी रक्षा की।

उनकी हाँक तीनों लोकोंको कम्पायमान करनेमें सक्षम है (***तीनों लोक हाँक तें काँपै***)। सुग्रीव, विभीषण एवं स्वयं अपने प्रभु श्रीरामजीके राज्यारोहणमें श्रीहनुमान्‌जीकी भूमिका ही प्रमुख रही। यहाँ भी तीनका संयोग है।

श्रीहनुमान्‌जीका अवतार ही रामकाजके लिये हुआ ***'राम काज लगि तव अवतारा।'*** इसीलिये वे ***'राम काज करिबे को आतुर'*** रहे। उनकी आतुरतामें भी त्वरा है, सजगता है, क्षिप्रता है, शीघ्रता है और अविलम्बिता है। वे ***प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया*** हैं। भक्त, प्रेमी और रसिक इन तीनोंमें रसिक होना श्रेष्ठ है। इसलिये श्रीभागवतमें **'पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः'** भी कहा गया है। उन्होंने रामकाज किये भी और ***'रामचंद्र के काज सँवारे'*** भी विपद् भंजक करुणामूर्ति श्रीरामपर जब-जब संकट आये, उसके निवारणकर्ता श्रीहनुमान्‌जी ही रहे। इसीलिये ***'रघुपति कीन्हीं बहुत बड़ाई'*** श्रीरामजी हनुमान्‌के कृतकार्योंसे इतने अभिभूत थे कि कभी वे ***'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'*** (मानस) तो कहीं ***'तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई'*** (ह०चा०) और कभी उनके ऋणी बन जाते हैं। प्रभु अपनेको ऋण चुकानेमें भी असमर्थ पाते हैं और कहते हैं—***'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं'*** (मानस) और विनय-पत्रिकामें तो श्रीराम एक अकिंचनकी भाँति बन गये और कहा—***'देवे को न कछू रिनियाँ हों'*** (विनय-पत्रिका)। यह था रघुपतिकी बड़ाईका रहस्य। माँ सीताकी सुधि लानेका प्रसंग हो या लक्ष्मण-मूर्च्छाका, नागपाशमें बद्ध श्रीरामका संकट हो या अहिरावणद्वारा बलि-प्रसंग, श्रीहनुमान्‌जी ही रक्षकके रक्षक बने, इसीलिये तो ***'रघुपति कीन्ही बहुत बड़ाई, तुम मम प्रिय भरतहिं सम भाई।'*** उन भरतके समान भाई माना जिन्हें ***'जग जप राम राम जप जेहीं'*** कहा जाता है। यही सेवाका फल है। श्रीहनुमान्‌जीके पास अमूल्य अमोघ राम-रसायन विद्यमान है ***'राम रसायन तुम्हरे पासा।'*** रामनामरूपी रसायन सर्वरोगहारी तथा दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंका शमनकर्ता है। हिन्दीके किसी भक्तने कहा है कि—

सभी रसायन हम करी, नहीं राम सम कोय।
रंचक घटमें संचरे, सब तन कंचन होय॥

श्रीमद्भागवतमें भी शौनकादि ऋषि सूतजीसे कहते हैं कि **'सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्'**। भगवत्कथा **श्रवणामृत** एवं **श्रवणमंगलम्** है। श्रीहनुमान्‌जीने निशाचरोंकी नगरी लंकापुरीमें दो बार श्रीरामकथा प्रस्तुत की। कथावक्ता श्रीहनुमान् और कथाके प्रथम श्रोता विभीषण बने। ***'तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।'*** सब रामकथा अर्थात् सम्पूर्ण कथा (आधी-अधूरी नहीं) कहनेके पश्चात् फिर अपना नाम बताया, जिससे वक्ता-श्रोता पुलकित हो उठे और ***'पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।'*** अकथनीय शब्दातीत शान्ति प्राप्त की। दूसरी बार श्रीरामकथाके वक्ता श्रीहनुमान्‌जी ही थे, पर श्रोता थीं जगज्जननी सीताजी। ***'रामचंद्र गुन बरनैं लागा'*** जिससे सीताजीके समस्त दुःख दूर हो गये और फिर भी ***'आदिहु तें सब कथा सुनाई'*** यहाँ भी आदि और सब कथा शब्द सम्पूर्ण कथाका संकेत देते हैं। परिणाम यह हुआ कि श्रीसीताजीको कहना पड़ गया—***'श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥'*** कथा श्रवणामृत और कर्णरसायन बन गयी।

भगवती गीताके अनुसार भक्त आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी चार प्रकारके कहे गये हैं, सभीके लिये प्रभु-नाम और प्रभुकथा परम हितकारी और सुखकारी है—**'तव कथामृतं तप्तजीवनम्।'** श्रीमद्-भागवतके दशमस्कन्धमें राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजीसे श्रीकृष्ण-कथाके कहनेका आग्रह करते हुए कहते हैं—

'भागवत-कथाके लिये तो आप्तकाम और पूर्णकाम योगीजन भी श्रवणोत्सुक रहते हैं, प्रभुकथा भवौषधि और मनोऽभिराम है। अत: श्रीहनुमान्‌जीका यह परम सौभाग्य रहा कि उन्हें रामकथाके साथ रामकाजका अवसर भी प्राप्त हुआ। वे परमभक्त रहे हैं। उनके पास रामरसायन है और रामकथा-रसायन भी।

श्रीहनुमान्‌जीका अनुग्रह उनकी शरण-ग्रहण, नाम-स्मरण, जप, ध्यान और सेवा सभी मंगलकारी हैं; क्योंकि वे मंगलमूर्ति हैं। यथा—

अनुग्रह—*'दुर्गम काज जगत के जेते, सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते।'*

शरण—*'सब सुख लहै तुम्हारी सरना, तुम रच्छक काहू को डर ना।'*

नामोच्चारण-*'भूत पिसाच निकट नहिं आवै, महावीर जब नाम सुनावै।'*

जप—*'नासै रोग हरै सब पीरा, जपत निरंतर हनुमत बीरा।'*

ध्यान—*'संकट तें हनुमान छुड़ावै, मन क्रम बचन ध्यान जो लावै।'*

भजन—*'तुम्हरे भजन राम को पावै, जनम जनम के दु:ख बिसरावै।'*

सुमिरन—*'संकट कटै मिटै सब पीरा, जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।'*

सेवा—*'और देवता चित्त न धरई, हनुमत सेइ सर्ब सुख करई।'*

मनोरथ-पूर्ति—*'और मनोरथ जो कोइ लावै, सोइ अमित जीवन फल पावै।'*

बन्धन-मुक्ति—*'जो सत बार पाठ कर कोई, छूटहि बंदि महा सुख होई।'*

सामान्य पाठसे लाभ—*'जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा, होय सिद्धि साखी गौरीसा।'*

स्वयं भगवान् शंकर साक्षी हैं कि सिद्धि प्राप्त होकर ही रहेगी। इस प्रकार श्रीहनुमान-चालीसा सर्वजन-सुलभ, भक्ति-शरणागतिप्रदायक, संकटमोचक, सुमति-प्रदायक और *'मंगल भवन अमंगल हारी'* की विशेष कृपा प्राप्त करानेवाला है।

हिन्दू संस्कारोंकी महानता

हिन्दूपदपादशाहीकी स्थापना करनेवाले गौ-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी महाराज शाहजी भोंसले और वीरमाता जीजाबाईकी सन्तान थे। शाहजी भोंसले बीजापुरके नवाबके अधीन जागीरदार थे। यह बात जीजाबाईके मनोनुकूल नहीं थी। वे स्वयंका एक हिन्दू-राज्य चाहती थीं, जिसमें हिन्दू धर्मसंस्कारोंका सम्यक् निर्वाह हो सके; क्योंकि विधर्मी नवाबके अधीन ऐसा सम्भव नहीं था। इसके लिये जीजाबाईने महाराष्ट्रकी अधिष्ठात्री देवी शिवा भवानीकी आराधना की, जिसके फलस्वरूप उन्हें शिवाजी-जैसा पुत्र प्राप्त हुआ।

माता जीजाबाई बालक शिवाको बचपनसे ही रामायण और महाभारतकी कहानियाँ तथा महापुरुषोंके चरित्र सुनाया करती थीं, वे उन्हें हिन्दू धर्मपर आये संकट और उसके समाधानकी भी शिक्षा दिया करती थीं। माँद्वारा दी हुई ये शिक्षाएँ ही शिवाजीमें संस्कारके रूपमें विकसित हुईं। उनका प्रभाव यह हुआ कि बचपनमें ही शिवाजीने गायको पकड़कर ले जाते हुए कसाईका हाथ काटकर मानो मुगल साम्राज्यको चुनौती ही दे दी थी। आगे चलकर इन्हीं शिवाजी महाराजने मुगल सम्राट् औरंगजेबको नाकों चने चबवा दिये। उसके अफजल खाँ और शाइस्ता खाँ-जैसे सेनापति इनके खड्गकी भेंट चढ़ गये। माता जीजाबाईकी इच्छाके अनुरूप इन्होंने महाराष्ट्रमें हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना की। शिवाजी माता जीजाबाईका बहुत आदर करते थे और प्रत्येक नारीमें उन्हींकी छाया देखते थे, तभी तो युद्धमें पकड़ी गयी 'गौहरबानू' नामक महिलाको उन्होंने 'माँ' कहकर सम्बोधित किया और आदर-सम्मानके साथ उसके परिवारजनोंके पास भिजवा दिया। ऐसा केवल हिन्दू संस्कारोंसे ही सम्भव है। [श्रीमती आशा सिंह]

हमारे आन्तरिक शत्रु—

उत्तेजनाके क्षणोंमें

[क्रोध—कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

मंगलमय प्रभुका प्रत्येक विधान हमारे मंगलके लिये होता है, भले ही बुद्धिपर अज्ञानका पर्दा पड़ा रहनेसे हम उसे समझ न पायें।

प्रभुकी मर्जीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। किसीने मेरा कुछ बिगाड़ा, मुझे नुकसान पहुँचा दिया अथवा मेरी इच्छाके प्रतिकूल कुछ हो गया, उसमें मंगलमयका वरद हस्त तो छिपा ही हुआ है। सुख हो या दु:ख, सफलता हो या असफलता, जीत हो या हार, मान हो या अपमान—सब उन मंगलमय दयामयके मंगल-विधानसे ही तो होता है। फिर किसपर गुस्सा करना, किसपर नाराज होना!

मालिककी मर्जीमें हम खुश रहना सीख लें, फिर तो क्रोधकी जड़ ही कट जाती है।

हमें विश्वास रखना चाहिये कि वे मंगलमय जो विधान करेंगे, उसमें हमारा मंगल ही होगा। हमारा कल्याण ही होगा।

सर निविश्ते मा बदस्ते-खुद-निविश्त।
खुश निवीसस्तो नख्वाहद बद निविश्त॥

हमारी निविश्त (तकदीर) उस मालिकने अपने हाथसे लिखी है। वह ठहरा खुश-निवीस। वह भला खराब क्यों लिखेगा?

इसलिये हमें भले-बुरे सबका हँसी-खुशीसे स्वागत करना चाहिये—

राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।
या यों भी वाह वा है औ वों भी वाह वा है॥

× × ×

क्रोधकी अभिव्यक्ति प्राय: वाणीद्वारा होती है। इसे शान्त करनेके लिये वाणीके संयमका अभ्यास जरूरी है। बिना विचारे, बिना सोचे-समझे जो जीमें आ जाय, बोल बैठनेकी आदत सदाके लिये छोड़ देनी होगी। मुँहसे कोई भी बात निकालनेके पहले सोच लेना होगा कि उसमें क्रोधका दंशन तो नहीं है, उससे किसीको कष्ट तो नहीं पहुँचेगा, किसीको उद्वेग तो न होगा? वह सच तो है? हितकर तो है? साथ ही मीठी भी तो है?

वाङ्मय तपकी पहली शर्त है—

'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।'

'वाणी उद्वेग करनेवाली न हो, साथ ही सच्ची, प्रिय और हितकारक भी हो।'

क्रोधकी उत्पत्ति रजोगुणसे बतायी गयी है। तमोगुणसे वह बुरी तरह भड़कता है। अत: उसपर काबू पानेके लिये रजोगुण और तमोगुण दोनोंसे ही किनाराकशी कर लेनी होगी। रजोगुणको उद्दीप्त करनेवाले, तमोगुण उकसानेवाले पदार्थोंसे दूर रहना होगा। ऐसे वातावरणसे भी अपनेको मुक्त रखना होगा। रजोगुण और तमोगुणको बढ़ानेवाले भोजनका परित्यागकर हलका और सात्त्विक भोजन अपनाना होगा।

× × ×

क्रोधको शान्त करनेके लिये सारा जीवनक्रम ही सुधारना पड़ेगा। सहनशीलता, स्वार्थत्याग और कष्टसहिष्णुताका अभ्यास करना होगा। हृदयको निर्मल बनाना पड़ेगा। कैसा भी अप्रिय प्रसंग उपस्थित हो, चित्तको क्षुब्ध न होने देना पड़ेगा।

एक दिनमें इसकी साधना सम्भव नहीं। इसके लिये सतत अभ्यास करना होगा और हर क्षण सावधान रहना होगा। किसी प्रसंगको लेकर हम उत्तेजित न हो जायँ!

× × ×

एक लड़केसे चरित्र-सम्बन्धी एक अपराध बन पड़ा। उसके मामाके पास शिकायत गयी। सहज ही उत्तेजित होनेवाले मामाने हंटर उठाकर उसे सड़ासड़ छोड़ना शुरू कर दिया। घरकी महिलाएँ, माँ-बहनें रो

रही थीं, समझा रही थीं; पर क्रोध शान्त नहीं हो पा रहा था।

संयोगसे मेरी ट्रेन छूट गयी और मैं वहाँ जा पहुँचा। उत्तेजनाकी चरम सीमापर पहुँचे हुए लड़केके मामा छुरा खोज रहे थे। सब हक्के-बक्के थे; मैंने आगे बढ़कर उनके हाथसे छुरा छीन लिया।

मेरे प्रति उनके हृदयमें कुछ आदर-भाव था, इसीसे मैं उन्हें शान्त करनेमें समर्थ हो सका। अन्यथा न जाने क्या हो रहता!

× × ×

किसीसे कोई गलती हो गयी, हो गयी। कोई काम बिगड़ गया, बिगड़ गया। उसपर उत्तेजित होनेसे लाभ?

उत्तेजित होनेसे, बिगड़नेसे, नाराज होनेसे, ऊलजलूल, ऊट-पटाँग कुछ कर बैठनेसे नुकसानके सिवा फायदा कुछ न होगा।

दूसरा कुएँमें गिरता है तो मैं भी क्यों कुएँमें गिरूँ? किसीने कोई गलती कर दी तो मैं भी गलती क्यों करूँ? उत्तेजनाके क्षणोंमें यही सोचनेकी जरूरत है कि क्रोधसे बिगड़ा हुआ काम और बिगड़ेगा ही, सुधरेगा नहीं। तब क्रुद्ध होने और अपनी शान्ति खोनेसे क्या फायदा! थोड़ी-सी समझदारीसे बिगड़ी बात बन जायगी। इसलिये विवेकको हाथसे न जाने देनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

× × ×

क्रोधसे मुक्त होनेके लिये क्षमाधारणका अभ्यास सबसे जरूरी है। क्रोधके आवेशमें गलती कर बैठना अस्वाभाविक नहीं। गलतीका पता चलते ही उसे सुधार लेना चाहिये।

किससे गलती नहीं होती? मनुष्यमात्रसे गलती होती है, परंतु क्षमा करना सबके वशकी बात नहीं। तभी न कहा गया है—To err is human. To forgive Divine!

क्षमा करनेके लिये हृदयकी उदारता चाहिये। जो क्षमा करता है, वही बड़ा है, वही महान् है।

क्षमा बड़ेन को चाहिये, छोटेन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात॥

× × ×

कहते हैं, एक साधक गुरुके आदेशानुसार सालभरसे साधना कर रहा था, सालकी समाप्तिपर जिस दिन गुरुने बुलाया था, उस दिन गुरुके ही गुप्त आदेशसे मेहतरानीने वहीं गर्दगुबार उड़ाना और झाड़ना शुरू कर दिया, जहाँ वह नहा-धोकर पूजा कर रहा था।

कूड़ा और गर्द उड़ते देख साधकको बड़ा क्रोध आया। वह मेहतरानीपर बुरी तरह बिगड़ा।

गुरुके पास गया तो वे बोले—जा बच्चा, फिर सालभर साधना कर।

दूसरी बार वर्षकी समाप्तिके दिन मेहतरानीने फिर वहाँ जाकर कूड़ा साफ करना शुरू किया और उसी क्रममें साधकके शरीरमें अपनी झाड़ू छुआ दी।

इस बार साधक पिछले सालकी तरह बिगड़ा तो नहीं, परंतु उसकी भौंहोंमें तेवर तो पड़ ही गये, फिर नहा-धोकर वह पूजापर जा बैठा।

गुरुने फिर कहा—'जा बच्चा, एक साल बाद आना।'

तीसरे सालकी समाप्ति जिस दिन हो रही थी, उस दिन मेहतरानीने कूड़ेसे भरी टोकरी ही लाकर साधकके सिरपर उड़ेल दी! तुरन्त उसने मेहतरानीके पैर पकड़ लिये—'धन्य है तू माँ! तूने मुझे क्रोध जीतनेकी शिक्षा देनेके लिये इतना कष्ट उठाया!'

क्षमा-धारणका ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि उत्तेजनाके क्षणोंमें भौंहोंपर बल भी न आये, हृदयमें भी उसका भाव उत्पन्न न हो। ईसाकी भाँति भले ही शरीर क्रासपर लटक रहा हो, अंग-अंगमें कीलें ठोंक दी गयी हों, रक्तके फौवारे छूट रहे हों, परंतु हमारे मुखपर एक ही वाक्य हो—'प्रभु! तू इन लोगोंको क्षमा कर। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!'

× × ×

तुलसी बाबाने काकभुशुण्डि-प्रकरणमें ठीक ही

कहा है—

'क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान?'

आँख खोलकर देखें तो सर्वत्र एक ही प्रभुकी लीला हो रही है। नाना प्रकारके रूप धारणकर वे ही तो हमारे समक्ष उपस्थित हैं, परंतु हमारी अक्लपर तो पत्थर पड़े हैं। हमारी दृष्टि दूषित है। इसीसे हम घट-घटमें उनके दर्शन नहीं कर पाते।

कृष्णेर मूर्ति करे सर्वत्र झलमल।
सेई देखे जार आँखि हय निर्मल॥

मायाका आवरण भेदकर देखनेकी देर है कि सर्वत्र प्रभुकी ही झाँकी दीख पड़ेगी।

साहेब तेरी साहबी घट-घट रही समाय।
ज्यों मेंहदी के पातमें लाली लखी न जाय॥

यह तत्त्व समझमें आ जाय फिर तो क्रोधकी जड़ ही नष्ट हो जायगी। फिर तो—***'जित देखों तित स्याममयी है!'***

तब किसपर क्रोध किया जायगा? किसके प्रति द्वेष किया जायगा? किससे घृणा होगी? किसका अपमान किया जायगा?

इसीलिये साधकोंसे कहा गया है—

घूँघटका पट खोल रे, तोंहि पीव मिलेंगे।
घट-घटमें तोरा साँई रमत है, कटुक बचन मत बोल रे॥ तोंहि॥

× × ×

क्रोध आना मानसिक दुर्बलता है। हमारी कमजोरी है। यहाँ हमारी बहादुरी इसीमें है कि हम क्रोधके हाथका खिलौना न बनें। हम उत्तेजित होकर क्यों अपनी शान्तिसे हाथ धो बैठें?

उत्तेजनाके क्षणोंमें हम अपनी कलुषित भावनाको व्यक्त करनेके लिये अपने-आपपरसे अपना नियन्त्रण छोड़ बैठते हैं। हमारी जबान बेकाबू हो जाती है। हमारी वाणी, हमारी लेखनी, हमारे हाथ-पैर—सब बिना सोचे-समझे ऊटपटाँग काम कर बैठते हैं। यह बहुत बुरी बात है। हमारे चित्तकी अमूल्य शान्ति जाती रहती है। इससे बढ़कर हमारी और हानि हो ही क्या सकती है?

× × ×

हमें दृढ़ निश्चय करना है कि कैसी भी परिस्थिति हो, कैसा भी प्रसंग हो, कैसी भी उत्तेजना हो—हम विचलित न होंगे। हम किसी भी कीमतपर अपनी शान्तिका खजाना नहीं लुटने देंगे।

× × ×

माना, उत्तेजनाके क्षणोंमें शान्त रहना बहुत कठिन है, परंतु कठिनाईपर विजय पानेमें ही तो हमारी बहादुरी है, इसके लिये हमें प्रतिपल, प्रतिक्षण सतर्क रहना होगा और हृदयमें भरी तरह-तरहकी दुर्भावनाओंको खोज-खोजकर निकाल बाहर करना पड़ेगा।

क्रोध दबकर घृणा और द्वेषका रूप ग्रहण कर लेता है। हमारा कर्तव्य है कि हृदयमें क्रोधको पलभरके लिये भी डेरा न जमाने दें। उसे जरा-सा सुस्तानेका मौका मिला कि उसने हमें पछाड़ा!

× × ×

आइये, क्रोधसे हम कुश्ती लड़ें और उसे 'चारों खाने चित' करके ही दम लें।

माना, हमारा दुश्मन बड़ा शक्तिशाली है, मगर सिर्फ तभीतक, जबतक हम उसे शक्तिशाली माने बैठे हैं। अन्यथा उसमें हिम्मत ही क्या, जो हमें पछाड़ सके।

हम साहससे आगे बढ़ें, हिम्मत न हारें, दाँव हारकर भी दूने उत्साहसे फिर आगे कदम बढ़ायें तो मजाल है कि काम-क्रोध आदि कोई भी विकार हमें परास्त कर सके। हम परास्त तो तभी होते हैं, जब हम मान लेते हैं कि वह हमसे बलवान् है। पर सच तो यह है कि उसके पास जो शक्ति है, वह हमारी ही दी हुई है। तब निराशा और पराजयका प्रश्न ही कहाँ उठता है?

मंगलमय प्रभु हमें बल दें कि हम उत्तेजनाके क्षणोंमें विचलित न हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

परम श्रेष्ठ बिरवा तुलसीका

(डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी श्रीवास्तव, एल-एल०बी०, साहित्यवाचस्पति)

"Quot Rami Tot Arbores" यह एक लैटिन कहावत है, जिसका तात्पर्य है 'जितनी शाखाएँ उतने पेड़'। ज्ञानके उत्तरोत्तर विस्तारको चरितार्थ करनेवाली यह कहावत बरगदके वृक्षपर भी खरी उतरती है। इसीलिये वट वृक्ष सबसे दीर्घायु वृक्ष माना गया है। पीपलका वृक्ष वैज्ञानिक दृष्टिसे सबसे अधिक ऑक्सीजन प्रदान करनेवाला वृक्ष बताया गया है। यही नहीं धार्मिक मान्यताओंके अनुसार इसमें स्वयं जगदीश्वरका निवास बताया गया है। उक्त सभी गुण-धर्मके बावजूद इन पेड़ोंका घरके अन्दर ही क्या, बल्कि घरके आस-पास भी होना वास्तुके दृष्टिकोणसे वर्जित है,* किंतु तुलसीका

पवित्र बिरवा प्रत्येक घरके अन्दर होना शुभ तथा कल्याण-कारी बताया गया है। पुराणोक्त व्यवस्थाके अनुसार—

तुलस्यां सकला देवा वसन्ति सततं यतः।
अतस्तामर्चयेल्लोके सर्वान् देवान् समर्चयन्॥

(श्रीपुण्डरीककृत तुलसीस्तोत्र श्लोक ९)

अर्थात् तुलसीके बिरवेमें सभी देवता सदैव आवासित रहते हैं, फलतः तुलसीके अभिषेक, दर्शन, पूजनसे सभी देवताओंके पूजन-आराधनका लाभ स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। यही नहीं—

रोपणात् पालनात् सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसञ्चितम्॥

अर्थात् तुलसीका बिरवा लगानेसे, उसका पोषण करनेसे, दर्शन, अभिषेक तथा आशीर्वादके मन्तव्यसे स्पर्श करनेसे भक्तजनोंके मन, वाणी और शारीरिक दोषों तथा व्याधियोंका सहज ही शमन होता है।

यह भी पुराणोक्त अभिकथन है कि—

यत्रैकस्तुलसीवृक्षस्तिष्ठति द्विजसत्तमाः।
तत्रैव त्रिदशाः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥

उक्त पंक्तियोंका आशय भी यही है कि जिस जगह तुलसीका बिरवा विद्यमान होता है, वहाँपर ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि सभी देवता विद्यमान रहते हैं। यह तो हुई देवताओंकी बात, जहाँतक तीर्थोंकी बात है, पुराणोक्ति है कि—

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले॥

अर्थात् तुलसीदलों या तुलसीपत्रोंमें पुष्कर आदि तीर्थ और गंगा आदि पावन सरिताएँ तथा वासुदेवादि सभी देवताओंका वास होता है।

रासायनिक या चिकित्सकीय दृष्टिसे आयुर्वेदमें तुलसीके विषयमें कहा गया है कि—

तुलसी लघुरुष्णा च रूक्षा कफविनाशिनी।
कृमिदोषं निहन्त्यैषा रुचिकृद् वह्निदीपनी॥

अर्थात् गुणमें तुलसी हलकी, उष्ण, रुक्ष, कफ और कृमि आदि दोषोंकी निवारक और अग्निका उद्दीपन करनेवाली होती है। संक्षेपमें तुलसी पित्त, कफ और वातादि त्रिदोषोंकी नाशक होती है।

---

* वृक्षा दुग्धसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद् दूरतः।

अर्थात् दूधवाले वृक्ष (जिसके काटनेपर या पत्ते तोड़नेमें दूध निकलता हो) और काँटेवाले वृक्ष घरके समीप अच्छे नहीं होते। वट वृक्ष भी दुग्धस्रावी वृक्ष है।

'सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं' वटवृक्ष घरके समीप होनेसे धननाश होता है।

तुलसीके चिकित्सकीय गुणकी व्याख्या करते हुए आयुर्वेदमें कहा गया है कि तुलसी तिक्त, कटु, कफ या खाँसी, हिचकी, वमन, उदरकृमि, मुख-दुर्गन्ध, देहशूल, कुष्ठ और नेत्ररोग आदि दैहिक दोषोंके निवारक गुणोंसे परिपूर्ण है।

तुलसीकी महिमाका वर्णन करते हुए यहाँतक कहा गया है कि—

त्रिकालं विनतापुत्र प्रयाश तुलसी यदि।
विशिष्यते कायशुद्धिश्चान्द्रायण शतं बिना॥

तथा—

तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः॥
दिशो दश च ताः पूता भूतग्रामश्चतुर्विधः।

(पद्म०उत्तर० २५। ३३-३४)

अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायं तुलसीका आयुर्वेदोक्त विधिसे सेवन किया जाय तो उससे मनुष्यकी मन, वाणी और शरीरकी सर्वविधि इतनी शुद्धि होती है, जो चान्द्रायण-व्रतसे भी अधिक प्रभावकारी होती है। तुलसीके संस्पर्शसे सम्पूर्ण वातावरण तथा पर्यावरण सर्वथा शुद्ध, पवित्र और विकार-मुक्त हो जाता है। प्रत्येक वर्ष पूरे कार्तिक-मासमें तुलसी-पूजनका विधान है, जिसमें देववेलामें नित्य तुलसी-पूजन तथा नित्य सायंकालीन आरती विहित है। कार्तिक मासमें तुलसीका भगवान् नारायणके साथ विवाह भी किया जाता है और उनसे प्रार्थना की जाती है—

अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक।
इमां गृहाण् तुलसीं विवाहविधिनेश्वर॥
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्यंनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम्॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्द्धिता मया।
त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भोः॥

बोध-कथा—

श्रेष्ठ कर्म ही सच्चे साथी

उन दिनों गुरुनानकदेव लाहौर गये थे। वहाँ यह नियम था कि जिस व्यक्तिके पास जितने अधिक रुपयेकी सम्पत्ति होती थी, वह अपने घरके ऊपर उतने ही झण्डे लगाता था। दुनीचन्द नामक व्यक्ति उस समय लाहौरमें सबसे अधिक धनी एवं समृद्ध था। उसके पास लगभग बीस करोड़ रुपयेकी सम्पत्ति थी। उसके घरकी छतपर रंग-बिरंगे बीस झण्डे लहरा रहे थे।

दुनीचन्द सेठ भी एक दिन गुरुनानकदेवके दर्शन करनेके लिये उनके पास आया और नतमस्तक होकर गुरुदेवसे बोला—'महाराज! आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

गुरुनानकदेवने उसे एक सूई देकर कहा—'दुनीचन्द! इस सूईको ले जाओ और मुझे अगले जन्ममें वापस कर देना।' दुनीचन्द अपनी धन-सम्पत्तिके अभिमानमें गुरुदेवका अभिप्राय नहीं समझा और सूई लेकर घर लौट आया। चिन्तनके क्षणोंमें उसे कुछ ही समय बाद विचार आया कि वह सूईको अगले जन्ममें कैसे वापस करेगा? मरकर वह इसे अपने साथ तो ले नहीं जा सकता। गुरुदेवने अवश्य ही किसी विशेष अभिप्रायसे यह सूई मुझे दी है। वह उसी समय वापस आश्रममें लौटा और गुरुदेवको प्रणाम करके कहा—'महाराज! आपने जो सूई मुझे दी है, वह मैं आपको अगले जन्ममें कैसे लौटा सकता हूँ? भला मरनेके बाद भी कोई व्यक्ति किसी वस्तुको अपने साथ ले जा सकता है क्या? आप अपनी यह सूई अभी वापस ले लीजिये।' गुरुदेव दुनीचन्दकी बात सुनकर मुसकराये और बोले—'दुनीचन्द! यदि तुम छोटी-सी सूई भी मरकर अपने साथ नहीं ले जा सकते, तो इतनी सारी दौलत जो तुमने इकट्ठी कर रखी है, कैसे साथ ले जाओगे?' गुरुदेवकी बातसे दुनीचन्दकी आँखें खुल गयीं। उसे सच्ची सीख मिल गयी थी। उसने उसी क्षण अपनी सारी धन-सम्पत्ति अभावग्रस्त लोगोंकी सहायतामें लगानेका निर्णय किया।

[प्रस्तुति—श्रीप्रह्लाद वन गोस्वामी]

लक्ष्मणकी जिज्ञासा

[ज्ञान, वैराग्य, मोह, प्रेम, भक्ति, जीव एवं ईश्वरके सम्बन्धमें]

(डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)

रामकथाके प्रत्येक पात्रका अपना वैशिष्ट्य है, लेकिन उन सबमें लक्ष्मणजीका स्थान अनुपम है। लक्ष्मण श्रीरामको अतिप्रिय हैं। श्रीरामके प्रति उनकी भक्ति अनन्य है। वे दुनियामें श्रीरामके अतिरिक्त न किसीको जानते हैं और न ही किसीको मानते हैं। यह बात वे बड़े गर्व और विनम्रतापूर्वक स्वयं श्रीरामसे कहते हैं कि हे नाथ! मैं स्वभावसे कह रहा हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसीको भी नहीं जानता। जगत्‌में जहाँतक स्नेहका सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, हे अन्तर्यामी! मेरे लिये वे सब कुछ केवल आप हैं।

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

(रा०च०मा० २।७२।४—६)

लक्ष्मणको भक्तिके लिये श्रीरामका सहज सान्निध्य चाहिये। वे श्रीरामके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। इसलिये श्रीरामको चाहे विश्वामित्रके साथ जनकपुर जाना हो या सीताजीके साथ वनवास, लक्ष्मण सदैव उनके साथ छायावत् रहते हैं। मानसमें वर्णित-प्रसंगोंके आधारपर लक्ष्मणसे हमारा स्वाभाविक परिचय एक उत्साही एवं साहसी युवकका है, जो अपने बड़े भाई श्रीरामसे अगाध प्रेम करता है। वे श्रीरामके यश, कीर्ति एवं प्रसन्नताका सदैव ध्यान रखते हैं। इसीलिये विभिन्न अवसरोंपर उनमें क्रोध और आक्रोश बार-बार दिखता है, जैसे धनुषयज्ञके समय महाराज जनककी बातें सुनकर, गंगापार करनेके लिये केवटसे मनुहार करते श्रीरामको देखकर, सेनासहित भरतको चित्रकूट आते देखकर, श्रीरामको दिये गये वचनकी सुग्रीवद्वारा उपेक्षा देखकर, समुद्रकी प्रार्थना करनेहेतु विभीषणका सुझाव सुनकर इत्यादिको इसी सन्दर्भमें समझा जा सकता है। लक्ष्मण श्रीरामके ऐसे शुभचिन्तक हैं, जो कई बार उनकी अतिशय उदारताको देखकर श्रीरामसे शिकायतके भावसे यहाँतक कह देते हैं कि 'आप सरलहृदय तथा शील और स्नेहके भण्डार हैं, आपका सभीपर प्रेम और विश्वास है, इसलिये सबको आप अपने ही समान समझते हैं।'

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥

(रा०च०मा० २।२२७)

दण्डकारण्यमें एक बार प्रभु श्रीराम सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उचित अवसर देखकर लक्ष्मण उनसे निश्छल भावसे पूछते हैं कि हे देव! मैं आपके चरणोंकी सदैव सेवा करता रहूँ, इसलिये मुझसे ज्ञान, वैराग्य और मायाके साथ उस भक्तिका वर्णन कीजिये, जिसके कारण आप दया करते हैं।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

(रा०च०मा० ३।१४।७-८)

अपनी जिज्ञासामें लक्ष्मणजी आगे कहते हैं कि हे प्रभो! मुझे ईश्वर और जीवका भेद भी बताइये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और मनसे शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ।

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

(रा०च०मा० ३।१४)

लक्ष्मणकी जिज्ञासाका श्रीरामद्वारा समाधान— श्रीराम लक्ष्मणके व्यक्तित्व एवं चारित्रिक विशेषताओंका ध्यान रखते हुए उनकी जिज्ञासाका समाधान करते हैं। श्रीराम कहते हैं कि हे भाई! तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं थोड़ेहीमें सब कुछ समझाकर कहूँगा। श्रीराम अपने कहे अनुसार लक्ष्मणके प्रश्नोंका उत्तर सूत्ररूपमें देते हैं। यह सूत्र इतना सरल है कि हर सामान्य व्यक्ति भी ज्ञान, वैराग्य, मोह, प्रेम, भक्ति, जीव एवं

ईश्वर-जैसी गूढ़ बातें सरलतासे समझ सकता है।

माया क्या है?—श्रीरामजी कहते हैं कि मनमें 'मैं और मेरा, तू और तेरा' का भाव ही माया है। इसने समस्त जीवोंको अपने वशमें कर रखा है। विषयोंके लिये जहाँतक इन्द्रियाँ एवं मन जाते हैं, उन सबको माया जानना चाहिये।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

(रा०च०मा० ३।१५।२-३)

जबतक हम 'मैं और मेरा तथा तू और तेरा' में उलझे रहेंगे, तबतक हमारा मन निश्छल नहीं हो सकता। मनकी यह स्थिति अत्यन्त दु:खदायी है, इसके कारण जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा हुआ कष्ट पाता रहता है। मनसे 'मैं और मेरा तथा तू और तेरा' के भाव दूर होते ही मन पवित्र हो जाता है। पवित्र मनसे ईश्वरकी भक्ति तथा जीवनमें आनन्द प्राप्त करना सरल हो जाता है।

ज्ञान क्या है?—श्रीराम लक्ष्मणको ज्ञानका महत्त्व समझाते हुए कहते हैं कि हे भाई! ज्ञान वह है, जहाँ कोई अभिमान नहीं है। जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मका दर्शन करता है, वही ज्ञानी है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥

(रा०च०मा० ३।१५।७)

वैराग्य क्या है?—वैराग्यकी सरल व्याख्या करते हुए श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं कि हे तात! उसीको परम वैरागी कहना चाहिये, जिसने सारी सिद्धियों और सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक—इन तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग दिया है।

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

(रा०च०मा० ३।१५।८)

सरल शब्दोंमें कहें तो संसारकी उन वस्तुओं एवं कर्मोंसे विरत होना वैराग्य है, जिसमें सामान्य लोग रमे रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें इसे '**दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:**' अर्थात् दु:खमें उद्विग्न तथा सुखसे आसक्त नहीं होना कहा गया है। कहीं लगाव, कोई बन्धन तथा किसीपर मोहका न होना वैराग्यके लक्षण हैं। वस्तुत: वैराग्य रागका विरोधी नहीं, बल्कि रागकी तृप्ति या रागकी अनावश्यकताकी स्थिति या भाव है। इस तरह हम कह सकते हैं कि जगत्‌में रहकर ईश्वरमें एकनिष्ठ होना वैराग्य है। लक्ष्मण इस वैराग्यके प्रतीक हैं, विग्रह-पुरुष हैं। इसीलिये उन्हें कुसुमायुध योगी कहते हैं।

जीव एवं ईश्वर क्या है?—जीव एवं ईश्वरके बीच अलौकिक सम्बन्धको समझाते हुए श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं कि जो मायाको, ईश्वरको और स्वयं अपने स्वरूपको नहीं जानता है, वह जीव है। इसी तरह, जो इन सबसे परे, सबको कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष देनेवाला तथा मायाका प्रेरक है, वह ईश्वर है।

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥

(रा०च०मा० ३।१५)

जीव एवं ईश्वरके भेदको हम पथिकजी महाराजके प्रसिद्ध भजनके माध्यमसे भी समझ सकते हैं। वे ईश्वरसे कहते हैं कि मुझमें और तुझमें केवल एक ही भेद है। मैं इस संसारके हाथोंमें हूँ और यह संसार तुम्हारे हाथोंमें है—

मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में॥

भक्ति क्या है?—श्रीराम भक्तिको समझाते हुए

कहते हैं कि धर्म या धर्मयुक्त आचरणसे वैराग्य और योगसे ज्ञान प्राप्त होता है। वेदोंके अनुसार वैराग्ययुक्त ज्ञान ही बन्धनसे मुक्तकर मोक्ष देनेवाला है। हे लक्ष्मण! जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है, जो भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाली है।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

(रा०च०मा० ३।१६।१-२)

ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिके बीच सम्बन्ध बताते हुए श्रीराम पुनः कहते हैं कि भक्ति सभी सुखोंकी मूल है, जो स्वतन्त्र है। उसे ज्ञान-विज्ञान या किसी दूसरे साधनोंकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो स्वयं भक्तिके अधीन हैं।

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

(रा०च०मा० ३।१६।३-४)

श्रीमद्भागवत-महापुराणमें भक्तिको ज्ञान एवं वैराग्यकी जननी कहा गया है। अतः ज्ञान एवं वैराग्यका अस्तित्व भक्तिमें निहित है। इस तरह श्रीरामसे ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य एवं भक्तियोगको सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

लक्ष्मणकी जिज्ञासाका कारण और इसका महत्त्व—लक्ष्मण अपने हृदयमें विद्यमान श्रीराम-भक्तिके माध्यमसे ज्ञान एवं वैराग्यकी साधना करते हैं। लक्ष्मणके स्वभावको जाननेवालोंके लिये उनकी यह जिज्ञासा सुखद आश्चर्यके समान लग सकती है। लक्ष्मणके स्वभावको जानकर यह नहीं लगता है कि वे कभी ऐसे गम्भीर प्रश्न पूछ सकते हैं। लक्ष्मणद्वारा पूछे गये इन प्रश्नोंके समय एवं परिस्थितिके विषयमें जानना हमारे लिये रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है। इस घटनाके बाद ही पंचवटीमें शूर्पणखाका प्रवेश होता है, जो सीताहरणका कारण बनता है। वनवासमें सुख एवं सन्तोषपूर्वक समय बितानेवाले श्रीराम, सीता एवं लक्ष्मणके जीवनमें सीताहरणकी घटना भूचाल ला देती है।

निश्छल, निष्कपट तथा चिन्तनशील व्यक्तिको समयसे पहले घटनेवाली घटनाओंका आभास हो जाता है। कदाचित् लक्ष्मण उसी पूर्वाभासके कारण श्रीरामसे यह प्रश्न करते हैं। लक्ष्मणको यह आभास हो जाता है कि आनेवाला समय उनका श्रीरामके साथ वन आनेके उद्देश्यकी पूर्तिका समय है। लक्ष्मणपर अपने साहस, शौर्य एवं पराक्रमसे दुर्दान्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके साथ-साथ भावनात्मक रूपसे बिखर चुके श्रीरामको सँभालनेकी जिम्मेदारी भी आनेवाली है। लक्ष्मणको वनवासकी आज्ञा देते समय सुमित्रा अम्बा कहती हैं कि हे लक्ष्मण! श्रीराम तो तुम्हारे भाग्यसे वन जा रहे हैं। जहाँ तुम उनकी एकनिष्ठ सेवा करके अपना जन्म सफल कर सकते हो।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

(रा०च०मा० २।७५।३)

लक्ष्मण मानो सुमित्रा अम्बाकी बातोंको सत्य करनेके लिये स्वयंको तैयार करना चाहते हैं। इसके लिये उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूपसे सुदृढ़ होनेकी आवश्यकता है। लक्ष्मण शरीरसे बलवान्, मनसे साहसी तथा अस्त्र-शस्त्र-विद्यामें निपुण हैं। परंतु मानसिक एवं आध्यात्मिकरूपसे मजबूत होनेके लिये वे श्रीरामसे ज्ञान, वैराग्य, मोह, प्रेम, भक्ति, जीव एवं ईश्वरके विषयमें शिक्षा प्राप्त करके स्वयंको भविष्यकी जिम्मेदारियोंके लिये सुदृढ़ बनाते हैं। इसी शिक्षाके बलपर वे श्रीरामके साथ मिलकर आगे कई विपत्तियोंका डटकर सामना करते हैं और उनपर विजय प्राप्त करते हैं।

लक्ष्मणकी जिज्ञासाका प्रसंग हमें यह शिक्षा देता है कि जीवनमें आनेवाली विकट परिस्थितियोंको समझना तथा उनसे निपटनेके लिये स्वभावगत दुर्बलताओंसे मुक्त होना आवश्यक है। इसके लिये हमें अपने अग्रज, गुरु, माता-पिता एवं शुभचिन्तकोंसे विचारविमर्श करके मार्गदर्शन लेते रहना चाहिये। यही जीवनके संघर्षोंमें सहारा और उनपर विजय-प्राप्तिका प्रभावी सूत्र है।

श्रीहनुमान-चालीसाकी रचना

(श्रीविश्वशान्ति टेकड़ीवाल परिवारकी प्रस्तुति)

श्रीहनुमान-चालीसाकी रचनाका कारण एक अति चमत्कारिक ऐतिहासिक प्रसंगसे जुड़ा हुआ है। एक ब्राह्मणकी अन्तिम यात्राकी तैयारियाँ हो रही थीं। गोस्वामी तुलसीदासजी वहाँसे जा रहे थे। किसी स्त्रीने आकर तुलसीदासजीका चरणस्पर्श किया। सहज ही, उन्होंने आशीर्वाद दिया, '**अखण्ड सौभाग्यवती भव।**'

उस महिलाने कहा—'महाराज! आपके शब्द व्यर्थ हैं। मेरे पतिका अभी-अभी निधन हुआ है।'

तुलसीदासजीने कहा—'मेरे मुखसे निकले हुए शब्द कदापि अन्यथा नहीं होंगे। प्रभु तेरे पतिको जीवित करेंगे।'

उन्होंने वहाँ उपस्थित सभीको आँखें बन्द करके श्रीरामनामका जप करनेके लिये कहा। कुछ ही क्षणोंमें मृत ब्राह्मण पुनर्जीवित हुआ। इस घटनाके साक्षी सभी उपस्थित लोग आश्चर्यसे चकित रह गये।

शहंशाह अकबरके वित्तमंत्री टोडरमल और भक्तकवि रहीमने गोस्वामी तुलसीदासजीके इस चमत्कारके समाचार बादशाहतक पहुँचाये। अकबरने तुलसीदासजीको दरबारमें उपस्थित होनेका हुक्म किया। साहित्यरचनामें अति व्यस्त होनेके कारण गोस्वामी तुलसीदासजीने आमंत्रणको अस्वीकार किया। बादशाहके अहंकारपर चोट लगी और उसने सैनिकोंको भेजकर तुलसीदासजीको बलपूर्वक दरबारमें बुलाया और कोई चमत्कार दिखानेका आदेश किया।

तुलसीदासजीने नम्रतासे कहा—'मैं कोई चमत्कार नहीं करता, मैं केवल श्रीरामजीका भक्त हूँ। यह सम्पूर्ण लीला एवं कृपा मेरे इष्टदेव श्रीरामकी ही है।'

'अच्छा, चलो देखते हैं, श्रीराम तुम्हारे लिये क्या करते हैं?' कहकर बादशाहने तुलसीदासजीको फतेहपुर सीकरीकी जेलमें बन्द कर दिया।

स्वाभिमानी तुलसीदासजीने बादशाहकी बर्बरताके सामने झुकनेसे इनकार किया और हनुमान-चालीसाकी रचना करके उसका चालीस दिनोंतक अनुष्ठान किया। अनुष्ठान सम्पन्न होते ही फतेहपुर सीकरीमें वानरोंका विशाल समूह उतर पड़ा और पूरे नगरमें तबाही मचा दी। शहरके रक्षक और मुगल सैनिक वानरसेनाके पराक्रमको असहाय बनकर देखते रहे। किसी वृद्ध हाफिजने अकबरको चेतावनी दी कि किसी पवित्र सन्तको बन्दी बनानेका यह परिणाम है।

बादशाहको अपनी भूलका एहसास हुआ। उसने तुलसीदासजीके चरण छूकर उनसे माफी माँगी और उन्हें सम्मानके साथ मुक्त किया। गोस्वामीजीके बाहर आते ही वानरोंका उपद्रव शान्त हुआ। तुलसीदासजीने अकबरको हमेशाके लिये फतेहपुर सीकरी छोड़ देनेकी सलाह दी। उनकी आज्ञाको शिरोधार्यकर अकबरने पुन: दिल्लीको राजधानी बनाया। इस घटनाके बाद अकबर जीवनभर गोस्वामी तुलसीदासजीके निजी स्वजनके रूपमें रहा और उसने शाही फरमान जारी किया कि श्रीराम और श्रीहनुमान्‌जीके भक्त हिन्दुओंसे कोई ऐसा दुर्व्यवहार न किया जाय, जिससे उन्हें परेशानी हो।

उपर्युक्त प्रसंग केवल कही-सुनी बात नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक तथ्य है। इसकी समीक्षा अनेक भारतीय विद्वान् और इतिहासकारोंके उपरान्त केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेसद्वारा प्रकाशित, 'Warrior ascetics and Indian empires' ग्रन्थमें विलियम पिन्च तथा ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेसद्वारा प्रकाशित 'Hanuman's Tale: The massage of a Divine Monkey' ग्रन्थमें फिलीप लुट्‌गेन्डोर्फ-जैसे पाश्चात्य अनुसन्धान-कर्ताओंने भी की है। यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि हनुमान-चालीसाका पाठ एवं अनुष्ठान करनेवाले भक्तकी रक्षा श्रीहनुमान्‌जी अवश्य करते हैं।

['ज्ञानगुणसागर-हनुमान'से साभार]

अनासक्ति और संन्यास

(स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

पारिवारिक जीवन ईश्वर-आराधनामें रुकावट उत्पन्न करता है, ऐसा समझना गलत है। गृहस्थाश्रमका विधान शास्त्रके द्वारा ही किया गया है। धर्म-अर्थ-कामका सम्पादन करनेके लिये गृहस्थ-आश्रममें ही अधिक अवकाश है। मुमुक्षु होकर उस आश्रममें रहते हुए साधना करनेके लिये कोई समस्या नहीं। देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण—इन तीनोंको समाप्त करके तदनन्तर मोक्षमें मन लगाना चाहिये। ऐसा स्मृतियोंमें कहा गया है। इन ऋणोंको समाप्त करनेके लिये गृहस्थाश्रम अवश्य चाहिये, परंतु मनुष्य धर्मको गौण करके अर्थ और कामको ही प्राधान्यता देकर, कैसे भी हो कुटुम्बका पोषण करते हुए, व्यवहार-चतुर बननेकी अभिलाषा रखता है। तब उसकी कामना बढ़ती ही जायगी। जैसे-जैसे इष्टार्थ पूर्ण होते जाते हैं, वैसे-वैसे कामना अग्निमें घी डालनेके अनुरूप बलवान् होती जाती है। न करने-लायक कर्म करनेपर अनिष्ट फल भी प्राप्त हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं। इस दृष्टिसे अवलोकन किया तो यह बात स्पष्ट होती है कि दुःखका कारण अधर्म ही है, न कि परिवारका पालन-पोषण।

सच है कि मुमुक्षुको पत्नी-बच्चे-घर इत्यादिमें अनासक्त रहना चाहिये। अभिष्वंग*रहित (आसक्तिरहित) होना चाहिये, ऐसा गीतामें उपदिष्ट है अर्थात् अपना कर्तव्यकर्म सब उखाड़ फेंककर पत्नी-बच्चेमें ही आसक्त न हो। परिवारजन ही मैं हूँ, इतने हदतक दुरभिमानयुक्त आसक्तिसे सब कुछ बिगड़ जाता है—यही उस उपदेशका अर्थ है। पुत्रोंका सकालमें उपनयन-संस्कार कराकर उन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक जीनेको सिखाना, कुलके अनुसार वेदशास्त्रादिका परिचय कराना द्विजाति पिताका कर्तव्य है। उसी प्रकार उनके लिये योग्य वधू-वर ढूँढ़कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश कराना भी कर्तव्य बनता है। इस प्रकारके व्यवहारसे मुमुक्षुतामें कोई कमी नहीं आती है।

अल्पविरक्तिवाले मुमुक्षुको कर्मयोग और भक्तियोगके द्वारा भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये। इस आराधनाके अंगरूपमें कुटुम्बभरण अर्थात् परिवारका पालन-पोषण भी अवश्य करें। इन सब लोगोंको परमेश्वरने ही मुझे सौंप दिया है, इसलिये परमेश्वर-प्रीत्यर्थ ही इन सबका भरण-पोषण कर रहा हूँ, इस भावनाको बढ़ाते जाना चाहिये। अपने समस्त परिवारको अध्यात्म-साधनाकी तरफ घुमाना चाहिये। इससे अपनी साधनाके लिये मदद ही मिलेगी, कोई आतंक उत्पन्न नहीं होगा।

अब जो तीव्र वैराग्यसे संन्यासाश्रमको ही स्वीकार करना चाहता है, उसे अपनी सम्पत्तिको पत्नी-बच्चोंको बाँटना चाहिये। वे योग्य स्थानमें स्थित रहें, इसके लिये प्रयत्न करना उसका कर्तव्य है। इस प्रकार अपनी समस्त धन-सम्पत्तिको कुटुम्ब, जाति और सत्पात्र—इन सबके लिये दान करके विधि-विधानसे किया गया संन्यास वीर्यवत्तर होकर भविष्यकी अध्यात्मसाधनामें सहायक बन जाता है। इसलिये जो उत्तमाश्रम स्वीकार करनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें भी अपने बच्चोंका विवाहादि कराना अनुचित नहीं। वह तो उनका कर्तव्य ही है।

कुटुम्ब-द्वेषसे मुमुक्षुत्व और भगवद्भक्तिके लिये कदापि संकेत नहीं है। संसारमें मिलनेवाले विषयभोगोंके प्रति अभिलाषा रखना ही परमेश्वरकी आराधनामें वास्तविक रोड़ा (अटकाव) है। मैं अध्यात्मसाधक हूँ, भगवद्भक्त हूँ—इस प्रकार कहलाते हुए समस्त लौकिक व्यापारका परित्याग करके आलसी होकर बैठनेवालेको इहलोकका सुख भी नहीं मिलता है और परमेश्वरका प्रसाद भी दूर हो जाता है। जिस प्रकार कुटुम्बको प्रेमसे देखते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण वसुधाका प्रेमपूर्वक दर्शन करना और भगवद्भावनाका सम्पादन करना भी मुमुक्षुत्व है और वही उत्तम भक्तिका प्रधान संकेत है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

---

* अनन्यात्मभावरूप आसक्तिविशेष अभिष्वंग कहलाता है। जैसे दूसरेके सुखी या दुखी होनेपर मैं ही सुखी-दुखी हूँ, ऐसा मानना अभिष्वंग है।

सन्त-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ वाल्मीकि रामायणमें वर्णन आता है कि श्रीरामजीको अगस्त्यजीने एक कंकण दिया। प्रभुने पूछा तो ऋषिने बताया कि श्वेत नामके एक राजा थे, उन्होंने बहुत दिनोंतक राज्य किया। धन, धरती, हाथी, घोड़ा, मकान आदिका बहुत दान दिया। मरकर स्वर्ग गये तो ब्रह्माजीने उनके पुण्यके फलके अनुसार एक अति सुन्दर दिव्य भवन उन्हें दिया। उसमें सारी सुविधाएँ थीं, पर वहाँ खानेकी कोई चीज नहीं थी। राजाको भारी भूख लगी थी। ब्रह्माजीने कहा—'तुमने किसी सन्तको भोजन नहीं कराया है। यहाँ तो वही वस्तु मिलती है और हजार गुना ज्यादा मिलती है, जिसका धरतीपर दान किया जाता है। भूख मिटानेके लिये अपने ही शरीरके मांसको खाओ।'

राजा दिव्य देवशरीर धारण किये विमानपर बैठकर आता, सरोवरमें पड़े अपने शरीरको खींच उसका मांस खाता और फिर चला जाता। ब्रह्माजीने कहा था—'जिस दिन तुम्हें किसी सन्तका दर्शन हो जायगा, उस दिन तुम्हारी भूख मिट जायगी। तुम्हारा शव भी नष्ट हो जायगा।' एक दिन श्रीअगस्त्यजी विचर रहे थे। राजाको मांस खाते देखकर पूछा। उस देवताने अपना चरित बताया। ब्रह्माजीके कथनानुसार अगस्त्यका दर्शनकर वह पापमुक्त हो गया। उसी राजाने यह कंकण हमें भेंट किया, यह विश्वविजयी कंकण है। ऐसे राजा श्वेतका अगस्त्यके दर्शनमात्रसे पाप दूर हो गया। यह है सन्त-दर्शनका प्रभाव!

❀ जिन-जिन ऋषि-मुनियोंको भगवान्के दर्शन हुए, वे धन्य हैं। हम लोग केवल उन भक्तोंके और भगवान्के चरित्रोंका स्मरण करें, उनके नामोंका कीर्तन करें, हमारा कल्याण इतनेसे ही हो जायगा।

❀ प्रेमका एक सिद्धान्त है कि प्रेमी-के-प्रेमीसे भी प्रेम करना। यदि हम किसी प्रेमीसे प्रेम करते हैं और उसके प्रेमीसे द्वेष करते हैं, तो हमारा प्रेमी हमसे सन्तुष्ट नहीं रह सकता है। माताको पुत्रमें प्रेम है, यदि कोई उस पुत्रमें प्रेम करता है, तो वह माताकी कृपा प्राप्त कर सकता है।

इस सिद्धान्तसे भगवान्से प्रेम करनेवालोंको चाहिये कि भगवान्के प्रेमी भक्तोंसे प्रेम करें। भक्तसे प्रेम करने और उसकी सेवा करनेसे भगवान् शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और यदि कोई भक्तसे वैर करता है, सन्तको बिना कारण ही सताता है, तो वह भगवान्के क्रोधसे जल जाता है।

जो अपराधु भगत कर करई।
राम रोष पावक सो जरई॥

प्रमाण है दुर्वासाका चरित्र।

❀ ईश्वरने संसारी जीवोंको निष्पाप करके उन्हें पुण्यमय, धन्य बनानेके लिये दो नदियोंको त्रैलोकमें प्रवाहित किया है। एकमें तो भगवान्का निज चरण-कमल-जल प्रवाहित है। ब्रह्माको श्रीचरण-प्रक्षालनका सौभाग्य मिला। फिर कालान्तरमें तीन धाराओंमें विभक्त होकर श्रीगंगाजी तीनों लोकोंमें प्रवाहित हुईं। उनके दर्शन-स्पर्शसे प्राणी कृतार्थ होते हैं। दूसरी कथा-सुधा-सरिता भगवद् भक्तोंके सात्त्विक शरीरमें श्रीमुखसे सदा प्रवाहित रहती है। उस गंगासे इस कथा-सुधा-सरिताकी महिमा विशेष बड़ी कही जाती है। पादोदकी गंगा विलम्बसे पवित्र करती है, पर सन्त-समाजमें सर्वदा एकरस प्रवाहित कथा-सुधा-सरिता तत्क्षण ही पवित्रकर प्रभुकृपा प्रदान करती है। कथा-प्रसंगोंसे भक्ति उत्पन्न होती है और पुष्ट भी होती है। अतः सत्संग-सभामें नित्य कथा-सुधाका पान करना चाहिये। भगवान् कथा-रूपसे हृदयमें प्रवेश करके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब कुछको पवित्र कर देते हैं। आप लोग सत्संग करें। आपका सत्संगमें प्रेम हो। जिस कार्यको श्रद्धा-विश्वासके साथ किया जाता है, उसका लाभ शीघ्र होता है। सत्संग करते-करते सत्संगमें प्रेम होगा। सत्संगको प्राप्त करनेकी इच्छा सभी ऋषि, देव, ब्रह्मा, शिव आदि करते हैं।

['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

सुख-दुःख

(श्रीलालजी मिश्र)

दुर्लभ मानव-जीवन अत्यन्त सौभाग्य एवं सुकृतका सुपरिणाम है। मानवका ही नहीं, अपितु जीवमात्रका अभीष्ट है—आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति एवं आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्ति। आत्यन्तिक सुखका तात्पर्य है—ऐसा सुख जिसका कभी अन्त न हो, जो असीम हो, जो सदा-सर्वदा बना रहे तथा आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्तिका तात्पर्य है—सम्पूर्ण दुःखोंसे निवृत्ति या उसका परिहार। दोनों उसी तरह एक ही सिक्केके दो पहलू हैं, जैसे ज्ञानकी प्राप्ति एवं अविद्याका नाश। विचारणीय बिन्दु यह है कि क्या व्यावहारिक जगत्में आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति सम्भव है? हम जो कुछ सुखका अनुभव करते हैं, वह क्षणिक अथवा अल्पकालिक होता है और उससे वंचित होनेका भय सदैव बना रहता है, जो कि दुःखका कारण है। इस संसारमें हम जो तथाकथित सुख प्राप्त करते हैं, वह इन्द्रियजनित अथवा इन्द्रियविषयजनित होते हैं, जो कि नितान्त अस्थायी होते हैं। इसको इस प्रकार समझा जा सकता है—प्रत्येक सांसारिक वस्तु षट् विकारोंसे ग्रस्त है (जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, अवनश्यति), जिससे किसी भी वस्तुका स्वरूप दो क्रमिक क्षणोंमें एक-जैसा नहीं रह जाता है अर्थात् प्रतिक्षण प्रत्येक वस्तुमें उसकी वर्तमान अवस्थासे अगली अवस्थामें परिवर्तन होता रहता है, जिसके कारण उस वस्तुके द्वारा प्राप्त अनुभवमें भी परिवर्तन होता रहता है। उदाहरणके लिये, जब एक बीज वृक्ष बनकर फल देता है, तो बहुत अच्छा लगता है, परंतु जब फल समाप्त हो जाते हैं अथवा वृक्ष नष्ट हो जाता है तो अच्छा नहीं लगता है। इसी प्रकार पांचभौतिक पदार्थोंके पृथक्-पृथक् विषयोंके सम्बन्धमें भी यह दृष्टान्त लागू होता है। इसीलिये गीताजीमें कहा गया है—यह संसार दुःखालय है, यह अशाश्वत है—'**दुःखालयमशाश्वतम्**'।

इसपर हम यदि गम्भीरतासे विचार करें, तो शास्त्रोंमें कहा गया है—'**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' अर्थात् यह जगत् मिथ्या है, यह जगत् मात्र प्रातिभासिक है, यह जगत् ब्रह्म ही है, यह जगत् ब्रह्मका विवर्त है, जो कि अज्ञानके कारण है। जैसे दर्पणपर प्रतिबिम्ब अथवा चलचित्रके परदेपर आगका लगना क्या स्थायी होता है? क्या उससे दर्पण अथवा परदेपर कोई प्रभाव पड़ता है? क्या दर्पण अथवा परदेकी अनुपस्थितिमें प्रतिबिम्ब बन सकता है अथवा आग लग सकती है? यहाँ दर्पण अथवा परदा अधिष्ठानके रूपमें कार्य करते हैं, जो प्रतिबिम्ब अथवा लगी हुई अग्निके कण-कणमें व्याप्त हैं, परंतु अधिष्ठान दिखायी नहीं देता है, दिखायी क्या पड़ता है—प्रतिबिम्ब अथवा आग।

उसी प्रकार यह जगत् ब्रह्म (अधिष्ठान)-पर अध्यस्त है, जो प्रतिबिम्ब अथवा अग्निकी तरह प्रातिभासिक दिखायी पड़ता है, वस्तुतः ज्ञान हो जानेपर अथवा अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर यह कुछ भी नहीं है, यह मिथ्या ही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब किसी वस्तुका अस्तित्व (आभास) मात्र अज्ञानके कारण है, अर्थात् वास्तवमें वह वस्तु है ही नहीं—मिथ्या है, तो वह वस्तु सुख कैसे दे सकती है? देखा जाय तो वह दुःख भी नहीं दे सकती है—दुःख तबतक रहता है, जबतक अज्ञान रहता है—यथा अँधेरेमें रज्जुका सर्प होनेका भ्रम तभीतक दुःख दे सकता है, जबतक प्रकाश न हो जाय। इस प्रकार यह संसार, मनके अज्ञानद्वारा ब्रह्ममें कल्पित है अथवा उसपर अध्यस्त है, वस्तुतः ज्ञान हो जानेपर यह मिथ्या ही है। कहनेका तात्पर्य यह है कि भौतिक पदार्थोंसे प्राप्त अथवा इन्द्रियजनित जो सुख है, वह वस्तुतः सुखका आभास है; क्योंकि इनमें वह सामर्थ्य ही नहीं है कि वे दीर्घकालिक सुखकी प्राप्ति करा सकें। प्रकारान्तरसे स्पष्ट है कि वास्तविक सुख या आनन्द उस वस्तुसे प्राप्त किया जा सकता है, जो अजन्मा हो, अविकारी हो, अविनाशी हो, अपरिवर्तनशील हो, सदा एकरस हो और सर्वशक्तिमान् हो—ये गुण तो अपनी आत्मा, अपने आपामें ही पाये जाते हैं। आत्माके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु उक्त

गुणोंसे युक्त नहीं है। अतः यदि सच्चा सुख, आत्यन्तिक सुख प्राप्त करना है एवं आत्यन्तिक दुःखसे निवृत्त होना है, तो हम अपनी आत्मासे प्रेम करें, अपनी आत्माकी शरणमें जायँ।

व्यावहारिक जगत्‌में प्रायः चार प्रकारसे दुःख प्राप्त होते हैं—(१) अभावके कारण, (२) असफलताके कारण, (३) अपनोंसे दुःख एवं (४) अपनेसे दुःख।

(१) आजकल भौतिक सुख-सुविधाओं अथवा जीवन-निर्वाहके लिये अर्थकी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यदि किसी पड़ोसी अथवा सम्बन्धीके यहाँ कार, एसी इत्यादि है और अपने यहाँ नहीं है, तो दुःख होता है। जीविकोपार्जनका कोई साधन नहीं है, तो वह दुःखका कारण है। इसीलिये तीन ऐषणाओंमें वित्तैषणाका भी एक प्रमुख स्थान है। यह प्रत्येक मनुष्यमें त्रिगुणोंके तारतम्यके अनुसार कम या अधिक होती है। इस दुःखकी निवृत्तिके लिये मनुष्यको शास्त्रविहित रीतिसे पुरुषार्थ—उद्यम करना चाहिये, निराश नहीं होना चाहिये। हमारे शास्त्रोंमें आलस्य या अकर्मण्यताका कोई भी स्थान नहीं है।

(२) कभी-कभी मनुष्यके पास कोई अभाव नहीं रहता है, परंतु अपने उद्देश्यकी प्राप्तिहेतु जब वह कर्म करता है और सफलता नहीं प्राप्त होती, तो दुःख होता है। ऐसी स्थितिमें कभी-कभी वह अवसादकी स्थितिमें आ जाता है और कभी-कभी वह आत्महत्या भी कर लेता है। ऐसी स्थितिके निवारणके लिये उसे ईश्वरकी शरणमें जाना चाहिये, उसे अपने कर्मको ईश्वरार्पित करते हुए, ईश्वरमें दृढ़ श्रद्धा-विश्वासके साथ अपने कर्मको आगे बढ़ाना चाहिये।

(३) कभी-कभी मनुष्यके पास कोई अभाव नहीं है और अपने उद्देश्योंमें सफल भी है, तो भी अपनोंसे दुखी रहता है, अपने स्वजन, अपने सम्बन्धी अथवा अपने पड़ोसीसे दुखी रहता है, उसका जीना दूभर हो जाता है, उसकी शान्ति उसका चैन विलुप्त हो जाता है। इस प्रकारके दुःखके निवारणके लिये उपाय यह है कि जिस व्यक्तिसे दुःख मिल रहा है, उससे आसक्ति और ममताको कम कर दे। धीरे-धीरे समस्या स्वतः समाप्त हो जायगी।

(४) कभी-कभी व्यक्तिके पास सब कुछ होता है, उसे कोई अभाव नहीं है, अपनोंसे कोई दुःख भी नहीं है; परंतु मनुष्य अपने-आपसे, अपने मनसे दुखी रहता है। ऐसा इसलिये होता है कि वह अतीतकी घटनाओं तथा भविष्यकी चिन्ताओं तथा मनमें तमाम नकारात्मक विचारोंके कारण विचलित हो जाता है और दुखी रहता है। इस दुःखकी निवृत्तिका सर्वोत्तम उपाय सत्संग है, निरन्तर सत्संगसे मनमें एकत्र नकारात्मक विचार नष्ट हो जाते हैं तथा सकारात्मक विचार पैदा होने लगते हैं।

व्यावहारिक जीवनको कैसे जिया जाय, जीवनमें विभिन्न समस्याओंका समाधान कैसे किया जाय—इस सम्बन्धमें हमारे जीवन-दर्शनके प्रत्येक पहलूपर विधि-निषेधपूर्वक शास्त्रोंमें मार्गदर्शन किया गया है, परंतु प्रायः हम देखते हैं कि थोड़ी-सी भी समस्या आ जाती है, तो हम विचलित हो जाते हैं, घबड़ा जाते हैं एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, जबकि शास्त्रमें कहा गया है—‘**विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा।**’ अर्थात् विपत्ति आ जानेपर धैर्य धारण करना चाहिये, और अभ्युदय होनेपर क्षमा। वैदिक वाङ्मयद्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन (ज्ञान)-को अनुभवके धरातलपर पुष्ट करनेके लिये हमारा पूरा जीवन, हमारा समाज, सारा संसार प्रयोगशालाके रूपमें सर्वसुलभ है, परंतु हम ईश्वरप्रदत्त इतनी बड़ी प्रयोगशाला होते हुए भी प्रयोग नहीं करते, इसलिये हमारा ज्ञान यथावत् अप्रयुक्त धरा-का-धरा रह जाता है और फलतः हमारी समस्याएँ यथावत् बनी रहती हैं।

हम इस सम्बन्धमें एक बहुत ही प्रासंगिक उदाहरण, समुद्रका लेते हैं। समुद्रकी ऊपरी सतहपर लहरों, बुद्‌बुदों, ज्वार-भाटा तथा तमाम झंझावातोंका प्रकोप दिखायी पड़ता है, परंतु समुद्रकी आन्तरिक सतहमें बिलकुल शान्ति रहती है, समुद्र बाह्य विक्षेपोंको अपने अन्दर नहीं ले जाता है। हमें समुद्रसे सीखना चाहिये कि हमारे बाह्य जीवनमें कितना ही संघर्ष, झंझावात अथवा विक्षेप क्यों न हो, परंतु इनको हमें अपने अन्दर नहीं ले जानेका भरसक प्रयास करना चाहिये, अन्दर बिलकुल शान्त होना चाहिये। जीवनमें यदि अन्दर शान्ति है, तो

इससे बढ़कर संसारमें सुख और क्या हो सकता है? आप कह सकते हैं कि यह सिद्धान्तरूपसे कहनेमें सरल है, परंतु व्यावहारिक दृष्टिसे करनेमें कदाचित् असम्भव-सा है। ऐसा नहीं है, यह बिलकुल सम्भव है। गीताजीमें भगवान् श्रीकृष्णने मनके सम्बन्धमें कहा है—'**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते**'। यह सम्पूर्ण जीवन, इतना बड़ा संसार ही प्रयोगशाला बना लीजिये और धीरे-धीरे अभ्यासद्वारा बाह्य जीवनकी समस्याओंको अपने शास्त्र एवं सन्त-वचनोंको आधार बनाकर, सकारात्मक सोचद्वारा उसे हल कर सकते हैं—अर्थात् बाह्य समस्याओंको अपने अन्दर ले जानेसे रोक सकते हैं। जीवनमें जब ऐसी स्थिति आ जाय तो समझना चाहिये कि हम जीवनके गूढ़ रहस्यको काफी सीमातक समझनेमें सफल हो गये हैं तथा अध्यात्म-साधनाके पथपर अग्रसर हो रहे हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः। शान्तिः॥ शान्तिः॥

भगवन्नाम-स्मरण भगवान्‌की कृपासे ही होता है

बाँकुड़ाकी बात है। एक सज्जन थे, श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका। वे अपनी बीती घटना सुनाने लगे। एक बूढ़ा बंगाली सरोवरके किनारे बैठा मछलियाँ पकड़ रहा था। श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं बद्रीदासजीने उसे देखा और कहा—'यह बूढ़ा हो गया, बेचारा भजनमें लग जाय तो अच्छा है।' उससे जाकर कहा कि तुम भगवन्नाम-उच्चारण करो तो उसे 'राम' नाम आया ही नहीं। वह मेहनत करनेपर भी सही उच्चारण नहीं कर सका। कई नाम बतानेके बादमें अन्तमें 'होरे-होरे' (हरि-हरि) कहने लगा। इस नामका उच्चारण हुआ, और कोई नाम आया ही नहीं। उससे पूछा गया कि 'तुम्हें एक दिनमें कितने पैसे मिलते हैं?' तो उसने बताया कि इतनी मछलियाँ मारनेसे इतने पैसे मिलते हैं। तो उन्होंने कहा कि 'उतने पैसोंके चावल हम तुम्हें दे देंगे। तुम हमारी दूकानमें बैठकर दिनभर 'होरे-होरे' (हरि-हरि) किया करो।' उसको किसी तरह ले गये दूकानपर। वह एक दिन तो बैठा। दूसरे दिन देरसे आया और तीसरे दिन आया ही नहीं। फिर दो-तीन दिन बाद जाकर देखा, वह उसी जगह धूपमें मछली पकड़ता हुआ मिला। उन्होंने उससे कहा कि 'तू वहाँ दूकानमें छायामें बैठा था। क्या तकलीफ थी? तुमको यहाँ जितना मिलता है, उतना अनाज तो हम तुम्हें दे देंगे, केवल दिनभर बैठा 'हरि-हरि' कीर्तन किया कर।'

उसने कहा—'मेरेसे नहीं होगा।' वह दूकानपर बैठ नहीं सका। इस घटनासे यह सिद्ध हुआ कि पापीका शुभ काममें मन लगना कठिन होता है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी पूरब पाप ते हरि चर्चा न सुहात। जैसे ज्वर के जोर से भूख बिदा हो जात॥

जब ज्वर (बुखार)-का जोर होता है, तो अन्न अच्छा नहीं लगता। उसको अन्नमें भी दुर्गन्ध आती है। जैसे भीतरमें बुखारका जोर होता है तो अन्न अच्छा नहीं लगता, वैसे ही जिसके पापोंका जोर ज्यादा होता है, वह भजन कर नहीं सकता, सत्संगमें जा नहीं सकता। इसलिये सज्जनो! एक बातपर ध्यान दें। जो भाई सत्संगमें रुचि रखते हैं, सत्संगमें जाते हैं, नाम लेते हैं, जप करते हैं, उन पुरुषोंको मामूली नहीं समझना चाहिये। वे साधारण आदमी नहीं हैं। वे भगवन्नामका भजन करते हैं, शुद्ध हैं और भगवान्‌के कृपापात्र हैं, परंतु जो भगवान्‌की तरफ चलते हैं, उनको अपनी बहादुरी नहीं माननी चाहिये कि हम बड़े अच्छे हैं। हमें तो भगवान्‌की कृपा माननी चाहिये, जिससे हमें सत्संग, भजन-ध्यानका मौका मिलता है।

हमें ऐसा समझना चाहिये कि ऐसे कलियुगके समयमें हमें भगवान्‌की बात सुननेको मिलती है, हम भगवान्‌का नाम लेते हैं, हमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। [ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज]

तीर्थ-दर्शन—

उत्तराखण्डके आराध्य टपकेश्वर महादेव

(श्रीउदयजी ठाकुर)

पर्वतराज हिमालय भारतीय जीवनमें दिव्य संस्कृतिकी धारा प्रवाहित करनेवाला देवतात्मा नगाधिराज है। इसकी गोदसे निकली गंगा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नद-नदियाँ सदियोंसे भारतीयोंको अनुप्राणित करती रही हैं। हिमालयके अंचलमें स्थित उत्तराखण्डके कण-कणमें योगेश्वर शिवकी लीला-गाथाएँ गुंजरित हैं। हिमालय पर्वत-शृंखलाके दक्षिणमें एक और छोटी पर्वतश्रेणी है, जिसे शिवालिक कहते हैं। शिवालिकसे अभिप्राय शिवकी जटाओंसे लिया जाता है। उत्तराखण्डकी राजधानी देहरादून नगर, जो पहले द्रोणाश्रम नामसे जाना जाता था, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें शिवालिक पर्वत-श्रेणियोंसे घिरा है। इसके पूर्वमें गंगा नदी और पश्चिममें यमुना नदी बहती हुई दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढ़ जाती है।

देहरादून शब्दमें दूनको 'द्रोण' का अपभ्रंश माना जाता है। वैसे 'दून' का पूर्व रूप 'द्रोणी' भी हो सकता है, जिसका अर्थ है दो पर्वतोंके मध्यकी घाटी। 'देहरा' का एक अर्थ देवालय भी है। इसी देहरादूननगरसे ६ किलोमीटरकी दूरीपर तमसा नदीके सुन्दर तटपर स्थित टपकेश्वर मन्दिर शिवभक्तोंकी दृढ़ आस्थाका प्रतीक और आकर्षणका केन्द्र है। कहते हैं, इस स्वत: निर्मित सिद्ध मन्दिरमें कौरवों-पाण्डवोंके गुरु द्रोणाचार्यने तपस्या की थी। यहाँ एक गहरी गुफाके अन्दर शिवलिंग है, जिसके ऊपर पानी 'टप-टप' करता टपकता रहता है। इसलिये इस स्थानका नाम टपकेश्वर हुआ। यदि थोड़ा और हटकर मनन करें तो 'टपकेश्वर' शब्द 'त्र्यम्बकेश्वर' का भी अपभ्रंश हो सकता है। 'अम्ब' का अर्थ नेत्र और जल भी होता है। तीन आँख होनेके कारण शिवको त्रिनेत्र, त्र्यम्बक आदि नाम भी दिया गया है। जिस स्थानपर यह मन्दिर स्थित है, वह गंगा, यमुना और तमसा-जैसी परम पावनी नदियोंके कारण त्र्यम्बक भी है।

टपकेश्वर मन्दिर इस अंचलमें प्राचीन कालसे ही देवाधिदेव शिवकी पूजा-अर्चनाका प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। यह मन्दिर देहरादूनके गढ़ी कैण्टमें स्थित है। यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्यसे अत्यन्त सुसज्जित एवं रमणीय है। कहा जाता है कि महाभारत-कालमें पाण्डव जब अज्ञातवासमें दर-दर भटक रहे थे, तो कुछ समय उन्होंने देहरादूनमें भी वास किया था, जहाँपर पवित्र शिवलिंग स्थापित है। उसी समय इस पावन स्थलका आविर्भाव हुआ था। इस मन्दिरके नीचे बहती तमसा नदी कभी पाण्डवोंकी जल-पिपासा शान्त करनेमें सहायक हुई थी। इस मन्दिरके गुफामें स्थित शिवलिंगपर टप-टप गिरती पानीकी बूँदें अपने-आपमें एक कौतूहलका विषय हैं; क्योंकि यह जल कहाँसे प्रवाहित हो रहा है, इसका अनुमान आजतक कोई भी नहीं लगा पाया है। स्कन्दपुराणमें वर्णित यह मन्दिर बहुत आकर्षक है। किंवदन्ती है कि पहाड़की गुफाके

अन्दर अपने-आप बने इस मन्दिरमें गायके थन-जैसी आकृतिसे अनवरत दूधकी धारा शिवलिंगपर गिरती रहती थी। यह दूधकी धारा कुछ समय पूर्वतक निरन्तर गतिसे टपकती थी। इधर आकर दूधकी धाराके स्थानपर जलकी बूँदें टपकने लगीं। वैज्ञानिकोंका कहना है कि दूधकी तरह सफेद जलकी धारा प्रवाहित होनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। टपकेश्वर मन्दिरमें धवल जलधार शायद चूनाके संसर्गके कारण प्रवाहित होती थी। यहाँ चूनेकी खान है और यहाँके पानीमें चूना मिला हुआ है। वैसे भी पयका अर्थ जल और दूध दोनों हैं। कहते हैं कि जब-जब भारी विपदा आती है, यह जलधार स्वत: बन्द हो जाती है। पुराने धार्मिक लोगोंके संस्मरणके अनुसार प्रथम विश्व युद्ध (१९१४ ई०)-में एक मासतक, द्वितीय विश्वयुद्ध (१९३९ ई०)-में दो मास और भारत-चीन-युद्ध (१९६२ ई०)-में लगभग तीन मासतक यह जलधार बन्द रही।

सामान्यत: दूनघाटी और विशेषत: टपकेश्वर मन्दिरका जिस सत्पुरुषसे सीधा सम्बन्ध है, वे आंगिरस गोत्रके गौरव, भारद्वाज ऋषिके पुत्र द्रोणाचार्य हैं। आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न होनेके कारण महाभारतमें स्थान-स्थानपर इनका उल्लेख 'द्रोण आंगिरस' के रूपमें हुआ है। महाशिवरात्रिके पर्वपर यहाँ लाखों श्रद्धालु दूर-दूरसे इस ऐतिहासिक टपकेश्वर महादेवके दर्शन करने आते हैं तथा शिवलिंगपर जलाभिषेक करते हैं। इस अवसरपर टपकेश्वर मन्दिरके प्रांगणमें मेलेका आयोजन भी होता है, जो कि शिवरात्रिके तीन दिन बादतक चलता है। टपकेश्वर मन्दिरके साथ ही श्रद्धालु सन्तोषी माता, हनुमान्-मन्दिर तथा महाकाली मन्दिरोंके दर्शन भी करते हैं। कई श्रद्धालु मन्दिरसे लगी तमसा नदीमें स्नानका आनन्द उठाते हैं।

बोध-कथा—

कष्टोंका मूल्य

किसी स्थानपर सन्तोंकी एक सभा चल रही थी, किसीने एक घड़ेमें गंगाजल भरकर वहाँ रखवा दिया, ताकि सन्तजनको जब प्यास लगे तो गंगाजल पी सकें। सन्तोंकी उस सभाके बाहर एक व्यक्ति खड़ा था, उसने गंगाजलसे भरे घड़ेको देखा तो उसे तरह-तरहके विचार आने लगे। वह सोचने लगा—'अहा! यह घड़ा कितना भाग्यशाली है, एक तो इसमें किसी तालाब, पोखरका जल नहीं, बल्कि गंगाजल भरा गया है और दूसरे यह अब सन्तोंके काम आयेगा। इसे सन्तोंका स्पर्श मिलेगा, उनकी सेवाका अवसर मिलेगा; ऐसी किस्मत किसी-किसीकी ही होती है।'

घड़ेने उसके मनके भाव पढ़ लिये और वह बोल पड़ा—बन्धु! मैं तो मिट्टीके रूपमें शून्य पड़ा था, किसी कामका नहीं था, कभी नहीं लगता था कि भगवान्‌ने हमारे साथ न्याय किया है। फिर एक दिन एक कुम्हार आया, उसने फावड़ा मार-मारकर हमको खोदा और गधेपर लादकर अपने घर ले गया। वहाँ ले जाकर हमको उसने रौंदा, फिर पानी डालकर गूँथा, चाकपर चढ़ाकर तेजीसे घुमाया, फिर गला काटा, फिर थापी मार-मारकर बराबर किया। बात यहीं नहीं रुकी, उसके बाद आँवेंके अन्दर आगमें झोंक दिया जलनेको। इतने कष्ट सहकर बाहर निकला तो गधेपर लादकर उसने मुझे बाजारमें भेज दिया, वहाँ भी लोग ठोक-ठोककर देख रहे थे कि ठीक है कि नहीं?

ठोकने-पीटनेके बाद मेरी कीमत लगायी भी तो क्या! बस २० से ३० रुपये। मैं तो पल-पल यही सोचता रहा कि 'हे ईश्वर! सारे अन्याय मेरे ही साथ करना था। रोज एक नया कष्ट, एक नयी पीड़ा देते हो, मेरे साथ बस अन्याय-ही-अन्याय होना लिखा है।' भगवान्‌ने कृपा करनेकी भी योजना बनायी है, यह बात थोड़े ही मालूम पड़ती थी।

किसी सज्जनने मुझे खरीद लिया और जब मुझमें गंगाजल भरकर सन्तोंकी सभामें भेज दिया, तब मुझे आभास हुआ कि 'कुम्हारका वह फावड़ा चलाना भी भगवान्‌की कृपा थी। उसका वह गूँथना भी भगवान्‌की कृपा थी, आगमें जलाना भी भगवान्‌की कृपा थी और बाजारमें लोगोंके द्वारा ठोके जाना भी भगवान्‌की कृपा ही थी। अब मालूम पड़ा कि कृपा-ही-कृपा थी।' [सोशल मीडियासे साभार]

'प्यार बच्चोंपर लुटायें तो कोई बात बने'

(सुश्री कृष्णा कुमारीजी)

पुरस्कार, शाबाशी, प्रशंसा आदिका प्रयोग मनुष्यको उत्साहित करके प्रेरित करनेके लिये किया जाता है, वहीं दण्ड एवं सजाका प्रावधान व्यक्तिमें सुधार लानेहेतु होता है। इन दोनों बातोंमें थोड़ा-बहुत साम्य होते हुए भी बहुत-कुछ भिन्नता है। पुरस्कार, प्रशंसा जहाँ सकारात्मक ऊर्जासे सराबोर करते हैं, वहीं दण्ड एवं सजा नकारात्मकताको उत्पन्न करते हैं। ध्यातव्य है कि नेगेटिव एनर्जीसे कभी पॉजिटिव एनर्जी निर्मित नहीं होती है।

हमारे पास दोनों रास्ते होते हैं। मगर हम इनमेंसे नेगेटिव शब्दोंका प्रयोग ही अधिक करते हैं, कम-से-कम बच्चोंके मामलेमें तो स्कूल हो या घर बात-बातपर उन्हें सजा देना, डाँटना, कोसना आम बात है। माता-पिता, शिक्षक या अन्य बड़े लोग बालकोंको डराते-धमकाते ही नजर आते हैं। उनका मत है कि लातोंके भूत बातोंसे नहीं मानते, या डरके मारे तो भूत भी भागते हैं अथवा क्या करें? बच्चोंको सही रास्तेपर लानेके लिये ये सब करना अत्यावश्यक है, वरना बच्चे बिगड़ जायँगे। वाह! क्या खूब··· क्या कहूँ आगे···। मारसे भूत भागते हैं या नहीं, ये तो किसीने शायद ही देखा हो, मगर प्यारसे बालक पास आते हैं एवं हर बात मान लेते हैं, यह मैंने खूब देखा है और रोजाना देखती हूँ।

'कहो प्यार से पास बैठाके 'कमसिन'
तुम्हारी वो हर बात को मान लेंगे।'

आखिर बच्चे तो बच्चेकी तरह ही रहेंगे, बड़े लोग जरा अपने गिरहबानमें झाँककर देखें, यानी अपने बचपनको याद करके देखें कि उन्होंने क्या-क्या गुल नहीं खिलाये थे। क्या उन्होंने शरारतें नहीं की थीं? छोटी-छोटी मासूम चोरियाँ नहीं कीं? पढ़ाईसे जी नहीं चुराया, आदेशकी अनुपालनामें कोताही नहीं बरती? और भी छुप-छुपकर क्या कुछ नहीं किया? जब कि आज देखा जाय तो बच्चोंका बचपन तो टी.वी., इण्टरनेट, बस्तेके बोझ, होमवर्क, आधुनिक जीवन-शैली, खेलसे दूरी, सह-शैक्षिक क्रियाओंकी इतिश्री आदिने छीन ही लिया है। बच्चोंमें वह बचपना, मासूमियत अब रही ही कहाँ है, जिसपर कुर्बान हुआ जा सकता है। शरारतें भी कम ही बची हैं, जो थोड़ी-बहुत बची हैं, उन्हें भी तो हम छीनते जा रहे हैं।

घर हो या स्कूल, बच्चोंसे बार-बार यही कहा जाता है, 'तुम किसी कामके नहीं हो, तुम निरे गधे हो, तुम्हारे दिमाग में भूसा या गोबर भरा हुआ है, तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता, तुम पढ़ नहीं सकते, तुम किसी कामके नहीं हो' आदि-आदि। अब यदि बालकको रात-दिन ऐसे ही नेगेटिव ऊर्जा मिलेगी तो··· ? बच्चा इससे कुण्ठित होगा और धीरे-धीरे बाल-अपराधी भी बन सकता है। यह सब करके आखिर हम बालकसे चाहते क्या हैं?

बच्चा झूठ बोलता है, क्योंकि वह बड़ोंसे डरता है। इसीलिये बहाने भी बनाता है। यदि वह स्कूल या घरमें सच बोलता है तो उसकी बातपर यकीन नहीं किया जाता है। आखिर बच्चा करे भी तो क्या? सजा, दण्ड उसे और ढीठ बना देते हैं। उसका कोमल मन आहत होकर रह जाता है। वैसे भी बड़े होनेका अर्थ यह तो नहीं कि हम बच्चोंपर अत्याचार करें, बेरहमीसे उन्हें पीटें, या कठोर दण्ड दें, आखिर यह हक हमें किसने दिया है। बड़े होनेका अर्थ तो विनम्रता है, क्षमाशीलता है। महाकवि रहीमने लिखा है, ***'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।'*** लेकिन बड़ोंका अहंकार उन्हें ऐसा करने नहीं देता। बालक उनकी बात नहीं माने तो वे तिलमिला उठते हैं। आखिर वे बड़े हैं, बच्चेकी हिम्मत कैसे हुई कि उनकी बातकी अवहेलना कर दी। ये बातें सब जानते हैं, मगर मानते कम ही हैं। अक्सर बड़े लोग अपनी बुद्धि, ज्ञान, विद्वत्ता, अनुभव आदिसे बच्चोंको तोलना चाहते हैं, जो बच्चोंके साथ सरासर अन्याय है। जब स्कूलमें छात्रोंको सबके सामने दण्ड दिया जाता है, तो उनके मनपर क्या गुजरती होगी? वे कितना अपमानित महसूस करते होंगे, कभी सोचा है बड़ोंने··· ? उनकी जगह वे स्वयंको रखकर देखें और फिर दण्डसे, भयसे हम बच्चोंको कुछ समयके लिये अपनी बात माननेको बाध्य कर सकते हैं, स्थायी रूपसे नहीं। यही नहीं, जब आपके बच्चोंको इसी प्रकार स्कूलमें शिक्षकोंद्वारा दण्ड दिया जाता है, तब आपको कितना दर्द होता है? कितनी गालियाँ देते हैं आप उन शिक्षकोंको? तो फिर जैसा व्यवहार

हम नहीं चाहते, वैसा औरोंके साथ क्यों?

भयसे प्रीत नहीं होगी; प्रीत प्रीतसे ही होगी। घरमें, स्कूलमें बालकको तनावग्रस्त, भययुक्त वातावरण मिलता है तो उससे बचनेके लिये वे अलग रास्ते ढूँढ़ते हैं। क्योंकि कोई भी उनकी बात सुननेको, उसपर विचार करनेको तैयार नहीं होता है। आखिर बालककी कुछ तो परेशानी हो सकती है। कितने ही बच्चे हैं, जो स्कूल तो जाते हैं, मगर वहाँसे बचकर इधर-उधर कभी-कभी तो मन्दिरमें समय व्यतीत करके स्कूल टाइमके समाप्त होनेके वक्त घर लौट आते हैं।

इस सबके लिये जिम्मेदार कौन हैं? माता-पिता या शिक्षक…।

'घर ही लौटा न पहुँचा शाला में
बच्चा पिटने से डर गया होगा।'

हमने तो बालकको मात्र परीक्षामें अधिक अंक लानेकी मशीन बनाकर रख दिया है। एक दिन होमवर्क नहीं करे तो घरमें तूफान खड़ा हो जाता है। स्कूलमें मेजपर खड़ा कर दिया जाता है। मत भूलिये, बालक बालक है, कोई मशीन नहीं। और ये भी सोचिये कि मशीन भी कभी-कभार आदेशके मुताबिक कार्य सम्पन्न नहीं करती है।

अपने अनुभवकी एक घटना मैं आपको बताती हूँ—मेरी कक्षाकी एक छात्रा दो महीनेसे स्कूल नहीं आ रही थी। मैंने अन्य बच्चोंसे कहकर, उसे एवं उसकी माँको बुलवाया। माँने भी शिकायतोंके अम्बार लगा दिये। मैंने समझाया, मगर बात नहीं बनी।

छात्रा कल आनेका बहाना करके चली गयी। फिर दो-चार दिनोंके बाद बुलवाया, तब भी नहीं आयी, उसने कहलवाया कि 'मैडमको ही मेरे पास भेज दो। फिर दो-चार दिनोंके बाद मैंने यह कहकर बुलवाया कि केवल वह मुझसे मिलने आ जाय, पढ़ने नहीं। आज उसके पिता उसे लेकर आये। छात्रा रो रही थी। शायद घरपर उसे डाँटा या पीटा गया था। आज भी वही बात की कि आज मैं नहीं रुकूँगी। कल स्कूल आ जाऊँगी। मैंने कहा कि 'पढ़ो मत, बस कुछ देर ठहर जाओ, खेल लो, लंचमें खाना खाकर चली जाना।' बहुत ही मुश्किल एवं प्रेम-प्रदर्शनके बाद वह रुकी। कुछ देरमें सहज हुई। फिर स्वत: ही बोर्डपर लिखे कार्यको करने लगी। कुछ देर बाद मैंने पूछा कि आखिर वह स्कूल क्यों नहीं आना चाहती? बोली कि अमुक सर मुझे बहुत पीटते हैं। एक बार तो प्रार्थना-सभामें सबके सामने उसके मुँहमें गुटका भरा होनेपर बहुत बुरी तरह थप्पड़ लगाये थे। तब वह बहुत रोयी थी, काँप उठी थी। इसके बाद भी एक-दो बार उसे पीटा गया। मैंने उसे आश्वस्त किया कि अब उसे कोई हाथ भी नहीं लगायेगा। मैं सरसे कह दूँगी। छात्राको मुझपर भरोसा हो गया। फिर वह पढ़ने भी लगी। पोषाहार भी खाया। फिर मैंने कहा, 'घर जाना है तो चली जाओ' तो उसने इनकार कर दिया और स्कूलमें पढ़ती रही। जबकि वह एक क्षण स्कूलमें ठहरनेको तैयार नहीं थी। हाँ, उसे रोकना इतना आसान तो नहीं था, लेकिन बच्चेकी समस्याको जाननेके बाद उसका समाधान किया जाय तो इस तरहकी अप्रिय घटनाओंसे बचा जा सकता है और बच्चोंको उचित राहपर भी लाया जा सकता है, क्योंकि मूलत: बच्चा बहुत मासूम और जिज्ञासु होता है। अन्तत: प्यारकी जीत हुई।

मैं तो इतना ही कहना चाहती हूँ कि बच्चोंसे प्यारसे पेश आइये, तो वे हर बात मानेंगे, संस्कारी नागरिक बनेंगे। उनकी बातको नजर अन्दाज नहीं करके उसपर तवज्जो दीजिये, उनका सम्मान कीजिये। उनकी मजबूरियोंको, परेशानियोंको सुनिये, उनके भागीदार बनिये, उन्हें हल करनेका प्रयास कीजिये। आखिर बालक भी तो वही सब करना चाहता है, जो आप उससे करवाना चाहते हैं। और फिर सम्मान देनेसे ही सम्मान मिलता है, केवल बड़े होनेका मतलब सम्मानके योग्य होना नहीं होता है। बालक तो प्रकृतिसे ही स्वाभिमानी होता है। उसपर जोर-जुल्म करनेसे पहले इतना-सा सोच लें कि वह भी किसीका बेटा या बेटी है। उसे अपनी उम्र, बुद्धि, विद्वत्तासे न तोलकर बालकको बालक ही जानकर उससे उचित व्यवहार करें। क्योंकि हमेशा बच्चा गलत नहीं होता। बालकको बालक ही रहने दें, उम्रसे पहले उससे अपने-जैसी विद्वत्ताकी उम्मीद रखना छोड़ दें, तो बहुत-सी समस्याएँ अपने-आप सुलझ जायँगी।

'डाँट-फटकारसे कुछ बात नहीं बनती है।
प्यार बच्चों पे लुटायें तो कोई बात बने।'

संत-चरित—

गुरु गोरखनाथ—एक महायोगी

(प्रो० श्रीरामदरश रायजी, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)

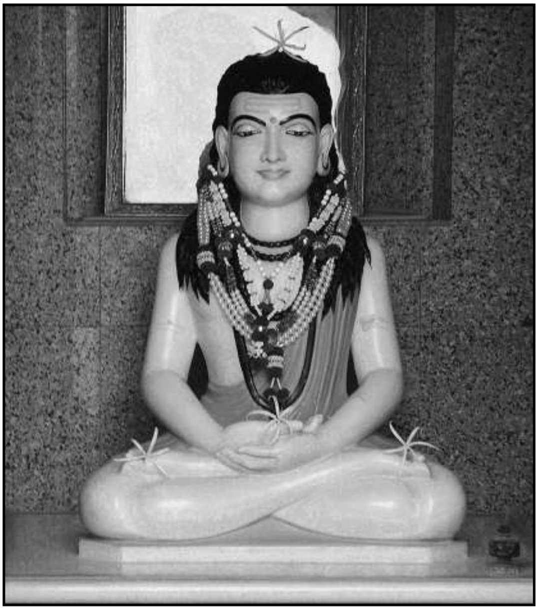

महायोगी गुरु गोरखनाथ भारतवर्षके आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरणके अग्रमनीषी थे। सनातन संस्कृतिके, धर्माश्रित लोकजागरणके और सामाजिक सामरस्यके योगनायक थे। विरक्त आत्मचरित्रमें स्फटिक नीलमणि-सदृश निर्मल और वन्द्य। 'गोरखनाथ एक व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्त्व थे। योगीमात्र नहीं, एक संसारी कायामात्र नहीं; अपितु भारतीय योगदर्शन, धर्मदर्शन, अध्यात्मदर्शन, समाजदर्शन और साहित्यदर्शनके युगवाही विराट् व्यक्तित्व थे। धर्म-अध्यात्म और भक्तिकी अनोखी-अद्‌भुत मंगलमूर्ति थे। योगिराज मत्स्येन्द्रका शिष्यत्व प्राप्तकर वे गुरुसे गुरुतर होते गये। नाथपन्थका वास्तविक प्रवर्तन गोरखनाथने किया। इस पन्थकी युगव्याप्ति और सर्वव्याप्तिका श्रेय गोरखनाथजीको प्राप्त है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने गोरखनाथको 'अपने युगका सबसे महान् नेता' कहकर एक बहुत बड़े सचसे साक्षात्कार कराया है।

दरअसल, गोरखनाथजीका जीवन कोई एक दार्शनिक प्रत्यय न होकर दर्शन-सम्पुंज है। जो जातक अयोनिज है। अमायिक और इन्द्रियनिग्रही है। कदाचित् काया-माया-मोहछायासे अनवबद्ध है। जीवनमें होते हुए भी जीवनमें नहीं है। नहीं होते हुए भी जीवनमें है। अध्यात्मप्रहरी सूचना देते हैं कि योगकायामें समाधिस्थ गुरु गोरक्षनाथ आज भी हिमवत्-उपत्यकाओंमें विद्यमान हैं।

गुरु गोरखकी जीवन-साधनाको भौतिक आँखोंसे पढ़ा नहीं जा सकता। महायोगीके जीवन-दर्शनसे साक्षात्कार पानेके लिये उनकी काव्यवाणी—उपदेशवाणीमें अनुस्यूत योग-अध्यात्म-धर्म-दर्शन-भक्ति और शक्तिके अर्थतरंगोंपर बैठकर बारम्बार उठना-गिरना होगा। गोरखवाणीके सतही-साधारण पाठमें गोरखनाथजीके यथार्थिक जीवन-दर्शनसे साक्षात्कार सम्भव नहीं है। कारण कि वह एक सिद्ध साधक—योगीकी असाधारण सन्ध्या भाषा है। नाथपन्थकी योगवाणी 'अलख-निरंजन' का अनुरटन करती है। जो अलख है, अदृश्य है, उसे लखकर देख लेना है। परंतु मायाबद्ध भौतिक आँखोंका यह विषय नहीं है। योगसिद्ध दार्शनिक आँखें ही इस निगूढ़ विषयसे साक्षात्कार ले पाती हैं। जब साधारण योगी (रमता जोगी)-के जीवन-दर्शनको, जीवन-वाणीको समझ लेना, अर्थायित कर लेना सहज-साध्य नहीं है, तब गुरु गोरखकी सिद्ध-आप्त असाधारण अध्यात्म-वाणी, धर्म-वाणी, दर्शन-वाणीको भौतिक जगत्का चर्मचक्षु कैसे साध सकता है?

गोरखनाथजी साधारण योगी नहीं, महायोगी थे। गुरु भी साधारण नहीं, महागुरु थे। नाथपन्थमें गोरखनाथ एकमात्र ऐसे नाथ योगी रहे हैं, जिनके विशेषणके रूपमें 'गुरु' पदका प्रयोग मिलता है। अतएव किसी 'महायोगी' और 'महागुरु' के जीवन-दर्शनकी सूत्रमयी गुह्य रेखाओंको पढ़ने-बाँचने-संचयित करनेकी औत्सुक्य-शक्ति सामान्य पुरुषमें नहीं हो सकती। इस अनुष्ठानको परिपूर्ण कर सकते हैं—मनोशक्ति-योगशक्ति और इच्छाशक्तिसे भरे ऋषि-वैरागी। 'योगदर्शन' के प्रणेता महर्षि पतंजलिने भी निष्कर्ष दिया है कि 'योग' प्रत्यक्ष दर्शन है। यह लिखने या कहनेमें नहीं आता। क्रियात्मक चलकर ही साधक समझ पाता है।

किसी भी जीवनका सबसे बड़ा दर्शन है उसका साहित्य। 'साहित्य' और 'संवेदना' वह कसौटी है, जिससे छिटकी हुई दर्शनकी किरणें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त रहती हैं, इसीलिये गुरु गोरखनाथका भाषाकार और साहित्यकार स्वरूप उन्हें अन्य नाथपन्थी योगियोंसे विशिष्ट स्थानका अधिकारी बनाता है। प्राकृत-अपभ्रंश-पुरानी हिन्दी और भोजपुरीके लघु-दीर्घ ४० ग्रन्थ रचकर, २८ संस्कृत-ग्रन्थोंका प्रणयनकर गोरखनाथने साहित्येतिहासमें स्वतन्त्र अध्याय प्राप्त किया है। तमाम इतिहासग्रन्थ, साहित्यग्रन्थ, शोधग्रन्थ, आलोचनाग्रन्थ, कोशग्रन्थ और अब कई एक गोरक्ष-शोधपीठ उनके साहित्यिक अवदानके साक्षी बन रहे हैं। ***'गरब न करिबा सहजै रहिबा'***का अहंरहित ज्ञानोपदेश देनेवाले योगी गोरखनाथ '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' जैसी सनातन आर्यवाणीके अर्थवाहक थे। नाथपन्थका 'सर्वोत्तम' गोरक्षका ही प्रदेय है।'

गुरु गोरखनाथके जीवन-दर्शनको उनकी 'सबदी' के उपदेश-वचनों और संस्कृत-वाणीकी अर्धालियोंमें पढ़ा जा सकता है। वाणीकी मधुरता, निरहंकारिता, रहनीकी सहजता और कथनी-करनीमें अभेद दृष्टि गुरु गोरखके जीवन-दर्शनके सूत्र-सारांश हैं, जिन्हें आचरणमें उतारने और उनके आधारपर मानवीय संवेदनाका विकास करनेकी वे सीख देते हैं। ***'हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा'*** और ***'कहणि सुहेली, रहणि दुहेली'***-जैसी काव्य-रेखाएँ उसी मानव-संवेद्य जीवन-दर्शनके अध्याय गढ़ती हैं।

तत्त्वत: गोरखनाथ एक योगी थे, कदाचित् महायोगी थे। अस्तु, यह स्वाभाविक था कि योगी-महायोगीके योगविषयक-ज्ञानविषयक और मनोविज्ञानविषयक अन्त:प्रज्ञापर बारम्बार प्रश्न खड़े होते, जबकि 'योग' और 'योगी' की अनेकश: परिभाषाएँ और विशेषताएँ पढ़ने और व्याख्या-विमर्शमें आ चुकी थीं। गीताके योगेश्वरसे लेकर योगसूत्रके महर्षि पतंजलितक। योगगुरु बाबा रामदेवके अनुलोम-विलोमसे लेकर योगविद्याके विश्वमंचतक। परंतु, 'सिद्ध-सिद्धान्त-संग्रह' में विन्यस्त गुरु गोरखनाथकी योगी-योगविषयक एक कारिकाने अपनी अन्योक्तिमें जो परिभाषा गढ़ दी है, वह एक ओर गोरखनाथके ज्ञानऋद्ध और अनुभवसिद्ध आप्तवाणीके साक्ष्य सौंपती है, तो दूसरी ओर उनके जीवन-दर्शनकी महीन झाँकी भी उपस्थित करती है। योगी-विषयक यह पारिभाषिक संवाद महायोगी गोरखका ही है—

गते न शोकं विभवे न वांछा
प्राप्ते न हर्षं स करोति योगी।
आनन्दपूर्णो निजबोधलीनो
न बाध्यते कालपथेन नित्यम्॥

उद्धृत कारिकाका एक-एक पद गोरखके जीवन-दर्शनसे साक्षात्कार दिलाता है। निश्चयत: किसी महायोगीद्वारा किया गया श्लोकबद्ध योगी-विमर्शका ऐसा भाष्य अन्यत्र दुर्लभ है। '**प्राप्ते न हर्षं स करोति योगी**' कहकर गुरु गोरखनाथने योगियों-वैरागियोंके लिये ऐसी ज्ञान-वर्तिका प्रज्वलित कर दी है, जो अमिट पथदर्शिका बनी रहेगी। गुरु गोरखके जीवन-दर्शनका निचोड़ है यह छन्द। इससे बड़ा और अर्थवान् योगीविषयक सन्देश किसी भी योगशास्त्रमें अदृष्ट और अनुल्लिखित है।

गोरखनाथके प्राकट्यके सन्दर्भमें भारतवर्षमें 'जयश्री' नगरकी भाँति अनेक स्थलोंकी चर्चा पुस्तकोंमें है। इसी प्रकारकी कथा गोदावरी नदीके किनारे बसे चन्द्रगिरि नामक गाँवसे भी जोड़कर कही-सुनी जाती है। 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' में ब्रिग्स महोदयने लिखा है कि गोरखनाथजीने सत्ययुगमें पंजाबमें तप किया, त्रेतायुगमें उन्होंने गोरखपुरमें तपस्या की, द्वापरयुगमें वे द्वारिका (हरमुज)-में तपमें प्रवृत्त थे और कलियुगमें सौराष्ट्रके काठियावाड़ स्थानके गोरखमढ़ीको उन्होंने धन्य किया। सत्ययुगमें पंजाब प्रदेशमें झेलम नदीके किनारे गोरखटिल्ला स्थानमें गोरखनाथजीने तप किया था। श्रीनाथतीर्थावलीमें कहा गया है कि पूर्व दिशाके तीर्थोंमें सबसे पहले गोरखपुर (गोरक्षपुर) स्थान है। उसके उत्तर भागमें

पुण्यप्रद (गोरक्ष) गोरखनाथजीका स्थान है। 'अहिंसा' गोरखनाथजीके जीवन-दर्शनका एक विशिष्ट पक्ष है—***'जोगी होइ पर निंद्या झषै, मद मांस अरु भांगि जो भषै'''।'*** अर्थात् गोरखनाथजीके आत्मदर्शनमें परायी निन्दा, मद्य-मांसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। उनके विचारसे मांस खानेसे दया-धर्मका नाश हो जाता है।'

गोरखनाथके जीवन-दर्शनको पावन-निर्मल और नैतिक आधारपीठिका प्रदान करनेवाला महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है 'कनक-कामिनीका परित्याग'। महायोगी गोरखनाथकी योगिजिह्वासे स्त्रीके लिये 'माई' पदका उद्घोष हुआ है। महायोगी गोरखनाथने नारीमें माताका दर्शन किया और बादके नाथयोगियोंने भी नारीको मातृरूपमें सम्मान दिया। गोरखनाथजी भिक्षाटनके समय स्त्रियोंको 'माई' शब्दसे सम्बोधित करते थे। गोरखनाथजीने उन लोगोंको धिक्कारा है, जिन्होंने मातृरूप धारण करनेवाली नारीको भोग्या मान लिया है। ***'जिन जननी संसार दिषाया ताको ले सूते षोले।'*** जब पार्वतीजीने चार नाथोंकी परीक्षा लेते समय उन्हें सुन्दरी-रूप दिखाया था, तो उस सुन्दरीमें गोरखनाथजीने माताका दर्शन किया था और उनके पुत्र होनेकी मन-ही-मन इच्छा की। गोपीचन्दजीने भी भिक्षाटनके समय 'माई' शब्दका प्रयोग किया था ***'हम जोगी परदेसी माई भिछ्या होइ त दीजै।'*** (नाथसिद्धोंकी बानियाँ)। गोरखनाथजीने साधकके लिये स्त्रीको मातृरूपमें दर्शन करनेका उपदेश किया है। उन्होंने साधकोंसे कनक और कामिनीका परित्याग करनेके लिये कहा है।

सचमुच, महात्याग-महातप-महामंगल और सत्य-अहिंसा-करुणा-क्षमा तथा सामरस्यका संचित आत्मबोध (**आनन्दपूर्णो निजबोधलीनो**) महायोगी गुरु गोरखनाथका जीवन-दर्शन भारतकी सनातन संस्कृतिका वह समुज्ज्वल धर्मकेतु है, जिसकी भास्वर आभा और शीतल छायामें विश्वमानवताकी मंगलयात्रा शाश्वत-अविश्रान्त बनी हुई है। योगीश्वर शिव, योगेश्वर कृष्ण और महायोगी गोरखनाथकी बृहत् त्रयीको भारतके सांस्कृतिक इतिहासका 'योगतीर्थ' कहना तनिक भी अत्युक्ति नहीं है; क्योंकि इनकी समन्वित योगशक्तिमें उनकी लोकमंगलकी महाभावना प्रसुप्तिमें भी जाग्रत् है।

भगवत्कृपाकी अद्भुत महिमा

- **जिसने भगवत्कृपाका पूरा-पूरा आश्रय लिया, उसके लिये लौकिक और पारलौकिक कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उसे उपलब्ध नहीं हो सके।**
- **भगवत्कृपा महान्-से-महान् मलिन प्राणीको भी क्षणभरमें शुद्ध करके भगवान्से मिलनेयोग्य बना देती है।**
- **भगवत्कृपा असम्भवको भी सम्भव कर डालती है।**
- **जिसने भगवत्कृपाका सहारा ले लिया, उसके लिये चिन्ता नामकी वस्तु नहीं रह जाती।**
- **जैसे कोई नौकामें बैठकर बड़े-से-बड़े जलाशयको भी पार कर लेता है, वैसे ही भगवत्कृपासे साधक संसाररूपी समुद्रको अनायास ही पार कर जाता है।**
- **जिसने केवल भगवान्की कृपाका सहारा लिया और अन्य सहारोंको त्याग दिया, उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।**
- **हम सब भगवत्कृपा पानेके अधिकारी हैं।**
- **भगवत्कृपामें ऐसी चमत्कारी दिव्य शक्ति है कि वह क्षणभरमें भगवान्से मिला देती है।**
- **भगवत्कृपासे भगवान्में विशुद्ध अनुराग पैदा हो जाता है।**
- **जिसने अपना बल न लगाकर केवल भगवान्की कृपाका भरोसा लिया, उसको आश्चर्य होगा कि ये असम्भव कार्य कैसे सम्भव हुए।** [सोशल मीडियासे साभार]

गाय स्वस्थ तो पालक, समाज और देश धनवान्

(श्रीमुलकराजजी बिरमानी)

वृन्दावनके एक बहुत कर्मनिष्ठ महात्मा, जो पाँचसे अधिक गोशालाएँ चला रहे हैं, उनसे मैंने पूछा—'महाराजजी! गायका भविष्य क्या है? क्या वह गोशालाओंमें भूखी रहकर प्रसन्न है और सुरक्षित है अथवा कसाईके छुरेके नीचे जाकर इस सारे जीवनके कष्टोंसे मुक्त होकर प्रसन्न है?' ये प्रश्न मैंने उनसे उस समय पूछा, जब वे मुझे अपनी एक तीन सौ गायवाली गोशालाके दर्शन करा रहे थे। यह देखकर मुझे थोड़ा मानसिक कष्ट भी हुआ कि उन तीन सौ गायोंमें एक भी गाय जुगाली नहीं कर रही थी। मैंने संकोचसे महात्माजीसे कहा—'महात्मन्! गायोंके पेट खाली हैं और वे भूखसे त्रस्त हैं।' महात्माजी मेरी बातपर थोड़ा खीझे, परंतु कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि ये दोनों परिस्थितियाँ—गोशालाओंमें भूखसे मरना या कसाईके छुरेसे कटना मुझे मान्य नहीं हैं।

गायको काटना घोर अपराध है और गायको भूखा रखना और भी घोर अपराध है। इसका हमें खण्डन तो क्या करना है, बल्कि इस स्थितिको हमें सुधारना है। गायको केवल भूसा ही नहीं देना है, बल्कि भूसेके साथ अन्य पौष्टिक पदार्थ मिलाकर उसका पालन करना है। दूध, जिसपर पहला अधिकार उसकी बछिया/बछड़ेका है, उसका उत्पादन बढ़ाना है, ताकि उसकी सन्तान हृष्ट-पुष्ट रहे। समाजके लिये विशेषकर हमारी सन्तानोंके लिये वह और अधिक तथा पौष्टिक दूध दे, देशकी अर्थव्यवस्थाको सबल बनाये, जिसमें केवल दूध ही नहीं, बल्कि उसका गोबर और गोमूत्र भी बहुत ही मूल्यवान् हैं।

इस समय परिस्थिति यह है और मुझे यह कहते हुए पीड़ा होती है कि देशकी अधिकतर गोशालाओंमें गाय इन विचारोंको ध्यानमें रखकर नहीं पाली जाती। वृन्दावनकी दो या तीन गोशालाएँ छोड़कर बाकी सब गोशालाओंका यही हाल है। मनको बड़ी शान्ति मिलती है यह सुनकर कि गुजरातके युवा और हरियाणाकी कुछ महिलाएँ गायको गोमाता समझकर उसके पालनमें कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। ऐसे उदाहरण अन्य स्थानोंमें भी होंगे, मैं उनसे निवेदन करूँगा कि वे अपने अनुभव अधिक-से-अधिक समाजको दें ताकि हम सब इकट्ठे होकर गायकी ठीक सेवा कर सकें और इस देशको आर्थिक सम्पन्नताकी ओर भी ले जा सकें। गोमाताकी इस समय तीन प्रकारसे सेवा हो रही है—एक गोशालाओंमें, दूसरी किसानोंके यहाँ और तीसरी गोप्रेमियोंके घरोंमें।

गोशालाओंमें गायोंकी स्थिति—मैंने अच्छी तरह वृन्दावनकी और थोड़ा-बहुत व्रजधामके बाहरकी गोशालाओंको देखा, जहाँ गोसेवाके भावसे तथा आर्थिक रूपसे सम्पन्न होनेके भावसे गाय पाली जाती है, वहाँ गायको हर प्रकारके पौष्टिक पदार्थ दिये जाते हैं। मैंने जितना पढ़ा और देखा उसके अनुसार इस समय गुजरात गोसेवामें सबसे आगे है और वह इस कार्यको बड़े लगनके साथ कर रहा है। उनके युवक-युवतियाँ इतना पढ़-लिखकर भी अच्छी वेतनवाली नौकरियाँ छोड़कर गोपालनमें लगे हैं।

सुचारुरूपसे पालनेकी विधि—गायको उचित भोजन, रहनेका स्थान, सफाई और समयपर मीठे पानीकी आवश्यकता होती है। इसके लिये ये युवा अपने आपको पूरी तरहसे काममें जुटाकर गोमाताकी सेवा कर रहे हैं, परंतु इसके साथ-साथ जितना अन्य सेवकोंकी जरूरत होती है, उनको वेतन देकर कामपर पूरी नजर रखकर काम करते हैं। मेरी नजरमें ऐसी गोशालाओंमें कोई भी ऐसी मिसाल नहीं है कि गो पालनेवालेके परिवारमें सम्पन्नता न आयी हो, बल्कि उनके करीबी सम्बन्धियोंको भी कामकी आवश्यकता होनेपर उन्हें भी वे कामपर लगा लेते हैं।

ऐसे ही हरियाणाके कुछ परिवार देश-विदेशके विद्यालयोंमें पढ़कर भी इस काममें जुटे हैं, परंतु ये सारा दृश्य इतना लुभावना नहीं है, अपितु कुछ स्थानोंपर बहुत ही दयनीय स्थिति है, जो मन अशान्त करनेवाली है।

मैं आपको वापस वृन्दावन ले जाऊँ, जहाँ भक्त बिहारीजी, राधावल्लभजी और राधारमणजीके अतिरिक्त और स्थानोंपर भी लोग अपनी मनौतियाँ लेकर जाते हैं। मनोकामना पूर्ण होनेपर गोदान एक जानी-मानी प्रक्रिया है। इनमेंसे कुछ लोग जो आर्थिक रूपसे बहुत सम्पन्न

हैं, वे गोशालाके प्रधानसे कहते हैं कि वे अपनी रुचिके अनुसार अच्छी गाय खरीद लें और हम अमुक दिन आकर गोदानकी प्रक्रिया सम्पन्न कर देंगे। अच्छा हो कि ये गोशालाएँ किसी अच्छी देशी नस्लकी गाय खरीदें, जैसे वृन्दावनमें विशेषकर साहीवाल नस्लकी गाय खरीदें, जो अपने-आपको वृन्दावनमें हरियाणाका वातावरण महसूस करती हैं। परंतु अधिकतर इस हालातमें गोशालाके संरक्षक विदेशी गाय खरीदते हैं, क्योंकि वह अधिक दूध देती हैं, चाहे उसके दूधकी पौष्टिकता नहींके बराबर हो। दूसरी श्रेणीके वे दानदाता हैं, जो गोशालामेंसे ही किसी गायको लेकर गोदानकी प्रक्रिया पूरी कर लेते हैं। कुछ तो इन सबसे भी अलग हैं, जो या तो बूढ़ी गाय अथवा बीमारीसे ग्रस्त गायको लेकर दानकी प्रक्रिया पूरी कर लेते हैं। इस सारी विकट परिस्थितिका क्या निवारण है। एक तो समाजमें सजगताकी कमी और दूसरा ये बार-बार बतानेकी आवश्यकता कि गायको भगवान् कृष्णने स्वयं पूजा है, चरानेके लिये ले जाते समय पाँवमें काँटे चुभनेपर भी उफतक नहीं की और गायको इतना बड़ा स्थान दिया है कि वापस आनेके समय उसके चरणोंमें लगी रजको अपने शरीरपर धारण करते थे। उन्होंने गायका गौरव इतना बढ़ा दिया है कि सच मानो तो हमें ठाकुरजीसे पहले गायका पूजन करना चाहिये। मैं बहुत बड़ी गोशालावालोंसे निवेदन करूँगा कि गायको केवल सूखा भूसा न देकर सरसोंकी खली, चनेका आटा और ऐसे तरल पदार्थ पानीमें घोलकर तथा कम-से-कम चार घण्टे रखकर भूसेमें मिलाकर दें।

इससे भी अधिक अच्छा हो, अगर गायको जंगलमें चराया जाय अथवा कम-से-कम रोज एक समय हरा चारा दिया जाय। वृजधाममें मैंने एक महात्माको देखा कि वे गायको बादाम और ऐसे ही अन्य पदार्थ अपने हाथसे घोंट-पीसकर देते हैं। उनके यहाँ बिजली थी तो किसी सेवकने उन्हें मिक्सी भेंट की, जो उनकी इस सेवामें सहयोगका कारण बनी।

वृन्दावनमें एक आश्रममें महात्माने कम-से-कम बीस थारपारकर नस्लकी गायें पाल रखी हैं। बड़ा सन्तोष होता है कि उन्होंने उसी नस्लके साँड़ भी पाल रखे हैं। इससे नस्ल खराब नहीं होती।

इस देशका दुर्भाग्य है कि बीते सौ बरससे आजतक समझदार विदेशी लोग जो देशी गायकी उपयोगिताको समझ गये और वे हर कीमतपर देशी गायको खरीदकर ले जाते रहे और हम ये नहीं समझे कि हमारी निधि हमसे ही छीनी जा रही है। अब कुछ नस्लके साँड़ यदि हम उनसे उधार माँगें और अच्छी कीमत देकर १५-२० दिनके लिये लेना चाहें, तो वे इतनी कीमत माँगते हैं कि हम उसे चुका नहीं सकते। अच्छी नस्लोंकी अपार महिमा विदेशी समझ गये, हम सोये रहे और अब हाथ मल रहे हैं।

किसानको गाय पालना जरूरी है—ये बड़ी निन्दनीय बात है कि किसान ट्रैक्टर लेनेके पश्चात् और यूरियासे अधिकाधिक उपजके गलत विचारसे गायकी उपयोगिताको भूल गया है। जिस गायने किसान और उसकी सन्तानोंको धन-धान्यसे सम्पन्न किया, अच्छी सेहत दी और समृद्ध बनाया, आज वही किसान गोबरका उपयोग न करके रसायन खादका अधिक प्रयोग कर रहा है! उन किसानोंसे पूछो, जिनकी भूमि यूरियाके अधिक प्रयोगसे बंजर हो गयी और उन्हें आज खानेके भी लाले पड़ गये हैं। किसान ये भूल गया कि उसके बुजुर्गोंने जो सम्पन्नता पायी थी, वह उन्हें गोपालनसे ही मिली थी। मेरा उन किसानोंसे निवेदन है कि वे फिरसे देशी गाय पालें, उसके गोबर और गोमूत्रका उचित प्रयोग करें, जैसे कि खाद बनायें और अपने खेतोंको फिरसे उर्वर बनायें। यह आवश्यक है कि किसान चार-पाँच गायोंके पालनेके साथ उसी नस्लका साँड़ भी पालें, ताकि गायोंकी सन्तान हृष्ट-पुष्ट हो, उसी नस्लकी हो और किसानके लिये लाभकारी हो।

गायकी व्यक्तिगत सेवा—अभी भी बहुत-से किसान जानते-मानते हैं कि घरमें गायकी सेवा अवश्य होनी चाहिये।

गोपालक गायकी सेवा इस प्रकारसे करें, जिस प्रकारसे हमारे श्यामसुन्दरने की। मेरा मानना है, उन्हें इससे लाभ होगा। पहले तो वे वह गाय खरीदें, जो भारतीय नस्लकी हो, दूसरा उसका क्रॉस उसी नस्लके स्वस्थ साँड़से करायें, तीसरा और सबसे आवश्यक गायको प्रेमसे पालें, अच्छी खुराक दें, रहनेकी अच्छी व्यवस्था करें तथा उसे बन्धनमुक्त रखें।

सुभाषित-त्रिवेणी

आत्माका स्वरूप

[Form of soul]

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

The soul is never born, nor it ever dies; nor does it become only after being born. For, it is unborn, eternal, everlasting and primeval; even though the body is slain, the soul is not.

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥

हे पृथापुत्र अर्जुन! जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है?

Arjuna, the man who knows this soul to be imperishable; eternal and free from birth and decay—how and whom will he cause to be killed, how and whom will he kill?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

As a man shedding worn-out garments, takes other new ones, likewise the embodied soul, casting off worn-out bodies. enters into others that are new.

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता।

Weapons cannot cut it nor can fire burn it; water cannot wet it nor can wind dry it.

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है।

For this soul is incapable of being cut; it is proof against fire, impervious to water and undriable as well. This soul is eternal, omnipresent, immovable, constant and everlasting.

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेको योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है।

This soul is unmanifest; it is incomprehensible and it is spoken of as immutable. Therefore, knowing it as such, you should not grieve.

[श्रीमद्भगवद्गीता २। २०—२५]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।५० बजेतक	शुक्र	मृगशिरा दिनमें २।० बजेतक	९ दिसम्बर	× × × × ×
द्वितीया ,, ११।४० बजेतक	शनि	आर्द्रा सायं ४।२१ बजेतक	१० ,,	भद्रा रात्रिशेष १२।४३ बजेसे।
तृतीया ,, १।४६ बजेतक	रवि	पुनर्वसु रात्रिमें ६।५४ बजेतक	११ ,,	भद्रा दिनमें १।४६ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १२।१५ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।४६ बजे।
चतुर्थी सायं ३।५७ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ९।३० बजेतक	१२ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।३० बजेसे।
पंचमी रात्रिमें ६।३ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, १२।० बजेतक	१३ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १२।० बजेसे।
षष्ठी ,, ७।५३ बजेतक	बुध	मघा ,, २।१४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।५३ बजेसे, **मूल** समाप्त रात्रिमें २।१४ बजे।
सप्तमी ,, ९।२१ बजेतक	गुरु	पू०फा० ,, ४।४ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।३७ बजेतक।
अष्टमी ,, १०।२२ बजेतक	शुक्र	उ०फा० रात्रिशेष ५।२९ बजेतक	१६ ,,	**कन्याराशि** दिनमें १०।२५ बजेसे, **धनुसंक्रान्ति** रात्रिमें ७।१४ बजे, **खरमास** प्रारम्भ।
नवमी ,, १०।५१ बजेतक	शनि	हस्त ,, ६।२३ बजेतक	१७ ,,	**अन्वष्टका श्राद्ध।**
दशमी ,, १०।५१ बजेतक	रवि	चित्रा ,, ६।४६ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।५२ बजेसे रात्रिमें १०।५१ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ६।३४ बजेसे।
एकादशी ,, १०।२० बजेतक	सोम	स्वाती ,, ६।४१ बजेतक	१९ ,,	**सफला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ९।२० बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ६।९ बजेतक	२० ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२।१७ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ७।५६ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ५।१८ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।५६ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिशेष ५।१८ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ६।१२ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा रात्रिमें ४।५ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रातः ७।४ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ४।५ बजेसे, **सायन मकरका सूर्य** दिनमें १२।५७ बजे।
अमावस्या सायं ४।११ बजेतक	शुक्र	मूल रात्रिमें २।४० बजेतक	२३ ,,	**मूल** रात्रिमें २।४० बजेतक, **अमावस्या।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२-२३, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।५८ बजेतक	शनि	पू०षा० रात्रिमें १।४ बजेतक	२४ दिसम्बर	**मकरराशि** रात्रिशेष ६।३९ बजेसे।
द्वितीया ,, ११।३९ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ११।२४ बजेतक	२५ ,,	× × × × ×
तृतीया ,, ९।१७ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ९।४४ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।७ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी प्रातः ६।५७ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ८।१० बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।५७ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें ८।५७ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।५७ बजे।
षष्ठी रात्रिमें २।४६ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ६।४६ बजेतक	२८ ,,	× × × × ×
सप्तमी ,, १।३ बजेतक	गुरु	पू०भा० सायं ५।३६ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।३ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें ११।५४ बजेसे, **पू०षा०का सूर्य** रात्रिमें ८।११ बजे।
अष्टमी ,, ११।४२ बजेतक	शुक्र	उ०भा० ,, ४।४९ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२२ बजेतक, **मूल** सायं ४।४९ बजेसे।
नवमी ,, १०।४४ बजेतक	शनि	रेवती ,, ४।२१ बजेतक	३१ ,,	**मेषराशि** सायं ४।२१ बजेसे, **पंचक** समाप्त सायं ४।२१ बजे।
दशमी ,, १०।१४ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ४।२० बजेतक	१ जनवरी	सन् 2023 प्रारम्भ
एकादशी ,, १०।१४ बजेतक	सोम	भरणी ,, ४।४८ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१४ बजेसे रात्रिमें १०।१४ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ११।३ बजेसे, **पुत्रदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १०।४८ बजेतक	मंगल	कृत्तिका रात्रिमें ५।४८ बजेतक	३ ,,	**कूर्मद्वादशीव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।५० बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ७।१७ बजेतक	४ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १।२१ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ९।१३ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।२१ बजेसे, **मिथुनराशि** दिनमें ८।१५ बजेसे।
पूर्णिमा ,, ३।१२ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ११।२९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१६ बजेतक, **पूर्णिमा, माघ स्नानारम्भ।**

कृपानुभूति

हनुमान्‌जीकी कृपासे कागजात मिले

ई० सन् २००५ में घटित घटनाको मैं जीवनभर नहीं भूल सकता, जिसमें मुझे एवं मेरे परिवारके सदस्योंको ईश्वरकी प्रत्यक्ष कृपाका अनुभव हुआ और मैं यदा-कदा इस घटनाका उल्लेख आज भी करता रहता हूँ।

उस समय मेरी पुत्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें एम-एस०सी० अन्तिम वर्षमें पढ़ रही थी। कैम्पस सेलेक्शनहेतु कुछ कम्पनियोंके प्रतिनिधि विभागमें आये थे। प्राथमिक इण्टरव्यूके उपरान्त चयनित छात्रोंके अन्तिम चयनहेतु इण्टरव्यूकी तिथि निर्धारित की गयी थी। जिसमें सभी प्रमाण-पत्रोंकी प्रमाणित प्रतिलिपि लेकर प्रस्तुत होना था। अत: एक दिन पूर्व मैंने पुत्रीके सभी प्रमाण-पत्रोंको एक कैरीबैगमें लेकर स्कूटरपर टाँगकर कार्यालयहेतु प्रस्थान किया। कार्यालयमें स्कूटर स्टैण्डपर गाड़ी खड़ीकर जब कैरीबैग लेनेके लिये हाथ बढ़ाया तो होश उड़ गये; क्योंकि वह थैला अपने स्थानपर नहीं था। रास्तेमें बैगके कहीं गिर जानेकी आशंकासे मैं तुरंत उलटे पैर आये हुए मार्गसे ही वापस घरकी ओर सड़कके दोनों ओर उक्त बैगको खोजते हुए घर पहुँचा।

उक्त कैरीबैग कहीं भी न दिखनेपर दुखी था। घरके बाहर पहुँचते ही मेरी माताजी एवं धर्मपत्नीने तुरंत वापस आनेका कारण जानना चाहा। मैंने घटित घटनासे उन्हें अवगत करा दिया और पुन: कार्यालयकी ओर चल दिया। उस दिन कार्यालय विलम्बसे पहुँचनेपर कार्यालयके अधिकारीने कारण जानना चाहा। मैंने उन्हें सम्पूर्ण विवरणसे अवगत कराया और ईश्वरपर सारा भार छोड़कर काममें जुट गया। मुझे निश्चिन्त देख कार्यालयके सहयोगी एवं अधिकारीगण आश्चर्यसे देख रहे थे। पूछनेपर मैंने विश्वासपूर्वक कहा कि 'ईश्वरपर मैंने भार डाल दिया—वे ही खोजकर देंगे।'

उधर मेरे घरपर भी मेरी माताजीने विघ्नविनायक श्रीगणेशजीसे एवं धर्मपत्नीने संकटमोचन हनुमान्‌जीसे प्रार्थना कर रखी थी। तभी लगभग साढ़े चार बजे सायंकाल किसीने मुझे घरसे दूरभाष आनेकी सूचना दी। फोनपर मेरी धर्मपत्नीने सूचित किया कि लगभग ४ बजे कोई अजनबी व्यक्ति घरका पता पूछते हुए मेरी पुत्रीको खोज रहे थे। पूछनेपर बताया कि उन्होंने संकटमोचन मन्दिरके पास कुछ बच्चोंको मार्कशीट, प्रमाणपत्र, अंकपत्र आदिको उलटते-पलटते देखा तो उन्होंने उनसे उक्त कागजात प्राप्त किये। देखनेपर किसीके आवश्यक कागजात समझकर उसे लेकर अध्ययन करनेपर हमारा पता एक स्थानपर मिला। माजरा समझते ही उन्होंने उसे मेरे घर आकर देना उचित समझा। घरमें सब लोग उन्हें साक्षात् ईश्वर ही मान रहे थे। बहुत आग्रह करनेपर मात्र एक गिलास जल पीकर उन्होंने अपना नाम बताया डॉ० टी०एन० मिश्रा।

घर वापस आकर उक्त सज्जनका विवरण ज्ञातकर उनके बारेमें अगले दिन अपने कार्यालयमें चर्चा की। ज्ञात हुआ कि वे मेरे कार्यालयके अधिकारीके घरके समीप ही निवास करते हैं। एक दूसरे सहकर्मी जो उनके साथ कार्य कर चुके थे, ने भी उनके सम्बन्धमें बताया। तुरंत बाद आनेवाले शनिवारको मैं अपनी पुत्रीके साथ संकटमोचन हनुमान्‌जीका दर्शनकर प्रसाद लेकर श्रीटी०एन०मिश्राजीके निवासपर मिलने पहुँचा। मिलकर कृतज्ञता व्यक्त की।

मुझे तो उक्त कैरीबैगके मिलनेकी उम्मीद नहीं थी। परंतु श्रीमिश्रजी, जो संकटमोचन हनुमान्‌जीके दर्शनहेतु जा रहे थे, उन्हें ईश्वरने प्रेरणा दी और उन बच्चोंसे कागजात प्राप्त ही नहीं किये, बल्कि उसे मेरे घरपर पहुँचाना भी आवश्यक समझा।

इस अविस्मरणीय और अविश्वसनीय घटनाको मैं और मेरा पूरा परिवार कभी भूल नहीं सका। समय-समयपर हम सभी इसकी चर्चा करते हैं और अन्य लोगोंको भी सुनाते हैं।

यह अनुभव बताता है कि ईश्वर हमेशा हमारे साथ है और पूरा भरोसा करनेपर वह किसी भी रूपमें हमारी सहायता करता है।—**श्रीकाशीनाथ शास्त्री**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'अतिथिदेवो भव'

वासुभाई और वीणाबेन गुजरातके एक शहरमें रहते हैं। आज दोनों यात्राकी तैयारी कर रहे थे। तीन दिनका अवकाश था। वे पेशेसे चिकित्सक थे। लम्बा अवकाश नहीं ले सकते थे। परंतु जब भी दो-तीन दिनका अवकाश मिलता, तो छोटी यात्रापर कहीं चले जाते हैं। आज उनका इन्दौर-उज्जैन जानेका विचार था।

दोनों साथ-साथ मेडिकल कॉलेजमें पढ़ते थे। वहींपर प्रेम अंकुरित हुआ और बढ़ते-बढ़ते वृक्ष बना। दोनोंने परिवारकी स्वीकृतिसे विवाह किया। दो साल हो गये। सन्तान कोई नहीं थी। इसलिये यात्राका आनन्द लेते रहते थे। विवाहके बाद दोनोंने अपना निजी अस्पताल खोलनेका फैसला किया। बैंकसे लोन लिया। वीणाबेन स्त्री-रोग-विशेषज्ञ और वासुभाई डॉक्टर ऑफ मेडिसिन थे। इसलिये दोनोंकी कुशलताके कारण अस्पताल अच्छा चल निकला था।

आज इन्दौर जानेका कार्यक्रम बनाया था। जब मेडिकल कॉलेजमें पढ़ते थे, तब वासुभाईने इन्दौरके बारेमें बहुत-कुछ सुना था। साथ ही महाकालके दर्शन करनेकी इच्छा थी, इसलिये उन्होंने इस बार इन्दौर-उज्जैनकी यात्रा करनेका विचार किया था। यात्रापर रवाना हुए। आकाशमें बादल घुमड़ रहे थे। मध्यप्रदेशकी सीमा लगभग २०० किलोमीटर दूर थी। बारिश होने लगी थी। मध्यप्रदेशकी सीमासे ४० किलोमीटर पहले छोटा शहर पार करनेमें समय लगा। कीचड़ और भारी यातायातमें बड़ी कठिनाईसे दोनोंने रास्ता पार किया। भोजन तो मध्यप्रदेशमें जाकर करनेका विचार था, परंतु चायका समय हो गया था। उस छोटे शहरसे चार-पाँच किलोमीटर आगे निकले। सड़कके किनारे एक छोटा-सा मकान दिखायी दिया, जिसके आगे वेफर्सके पैकेट लटक रहे थे। उन्होंने विचार किया कि यह कोई होटल है। वासुभाईने वहाँपर गाड़ी रोकी। दूकानपर गये। वहाँ कोई नहीं था। आवाज लगायी, अन्दरसे एक महिला निकलकर आयी। उसने पूछा क्या चाहिये भाई? वासुभाईने दो पैकेट वेफर्स लिये और कहा—बेन! दो कप चाय बना देना। थोड़ी जल्दी बना देना, हमको दूर जाना है।

पैकेट ले करके वे गाड़ीमें गये। वीणाबेन और वासुभाई दोनोंने पैकेटके वेफर्सका नाश्ता किया। चाय अभीतक आयी नहीं थी। दोनों कारसे निकल करके दूकानमें रखी हुई कुर्सियोंपर बैठ गये। वासुभाईने फिर आवाज लगायी। थोड़ी देरमें वह महिला अन्दरसे आयी। बोली—'भाई! बाड़ेमें तुलसी लेने गयी थी। तुलसीके पत्ते लेनेमें देर हो गयी। अब चाय बन रही है।' थोड़ी देर बाद एक प्लेटमें दो मैले-से कप लेकर वह गरमागरम चाय लायी। मैले कपको देखकर वासुभाई एकदमसे विचलित हो गये और कुछ बोलना चाहते थे। परंतु वीणाबेनने हाथ पकड़कर उनको रोक दिया। चायके कप उठाये। उसमेंसे अदरक और तुलसीकी सुगन्ध निकल रही थी। दोनोंने चायका एक सिप लिया। ऐसी स्वादिष्ट और सुगन्धित चाय जीवनमें पहली बार उन्होंने पी। उनके मनकी हिचकिचाहट दूर हो गयी। उन्होंने चाय पीनेके बाद महिलासे पूछा कितने पैसे?

महिलाने कहा—बीस रुपये। वासुभाईने सौका नोट दिया। महिलाने कहा कि 'भाई! छुट्टा नहीं है। बीस रुपये छुट्टा दे दो।' वासुभाईने बीस रुपयेका नोट दिया। महिलाने सौ रुपयेका नोट वापस कर दिया। वासुभाईने कहा कि हमने तो वैफर्सके पैकेट भी लिये हैं। महिला बोली—'यह पैसे उसीके हैं। चायके पैसे नहीं लिये।' 'अरे! चायके पैसे क्यों नहीं लिये?' जवाब मिला, 'हम चाय नहीं बेचते हैं। यह होटल नहीं है।' 'फिर आपने

चाय क्यों बना दी?' 'आप अतिथि हैं। आपने चाय माँगी। हमारे पास दूध भी नहीं था। यह बच्चेके लिये दूध रखा था, परंतु आपको मना कैसे करते? इसलिये इसके दूधकी चाय बना दी।'

'अभी बच्चेको क्या पिलाओगे?'

'अरे साहब! एक दिन दूध नहीं पियेगा तो मर थोड़े ही जायगा। इसके पापा बीमार हैं, वह शहर जाकर दूध ले आते, परंतु उनको कलसे बुखार है। आज अगर ठीक हो जायँगे तो कल सुबह जाकर दूध ले आयेंगे।'

वासुभाई उसकी बात सुनकर सन्न रह गये।

इस महिलाने होटल ना होते हुए भी अपने बच्चेके दूधसे चाय बना दी और वह भी केवल इसलिये कि मैंने कहा था अतिथिरूपमें आकर। संस्कार और सभ्यतामें महिला मुझसे बहुत आगे है। उन्होंने कहा कि हम दोनों डॉक्टर हैं। आपके पति कहाँ हैं? बतायें।

महिला उनको भीतर ले गयी। अन्दर गरीबी पसरी हुई थी। एक खटियापर एक सज्जन सोये हुए थे। बहुत दुबले थे। वासुभाईने जाकर उनका मस्तक देखा। माथा और हाथ गर्म हो रहे थे और काँप रहे थे। वासुभाई वापस गाड़ीमें गये, दवाईका अपना बैग लेकर आये। उनको दो-तीन टैबलेट निकालकर दी और खिलायी। फिर कहा कि इन गोलियोंसे इनका रोग ठीक नहीं होगा। मैं शहरमें जाकर इनके लिये इंजेक्शन और बोतल ले आता हूँ। वीणाबेनको उन्होंने मरीजके पास बैठनेको कहा। गाड़ी लेकर गये। आधे घंटेमें शहरसे बोतल, इंजेक्शन और साथमें दूधकी थैलियाँ भी लेकर आये। मरीजको इंजेक्शन लगाया, बोतल चढ़ायी और जबतक बोतल लगी रही, दोनों वहीं बैठे रहे।

एक बार और तुलसी तथा अदरककी चाय बनी। दोनोंने चाय पी और उसकी प्रशंसा की। जब मरीज दो घंटेमें थोड़े ठीक हुए, तब वह दोनों वहाँसे आगे बढ़े। तीन दिन इन्दौर-उज्जैनमें रहकर जब लौटे तो उनके बच्चेके लिये बहुत सारे खिलौने और दूधकी थैली लेकर आये। वापस उस दूकानके सामने रुके। महिलाको आवाज लगायी, तो दोनों बाहर निकलकर उनको देखकर बहुत प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि आपकी दवाईसे दूसरे दिन ही बिलकुल स्वस्थ हो गया। वासुभाईने बच्चेको खिलौने दिये। दूधके पैकेट दिये। फिरसे चाय बनी, बातचीत हुई, अपनापन स्थापित हुआ। वासुभाईने अपना एड्रेस कार्ड दिया और कहा—'जब भी शहर आओ जरूर मिलो' और दोनों वहाँसे अपने शहरकी ओर लौट गये। शहर पहुँचकर वासुभाईने उस महिलाकी बात याद रखी। फिर एक फैसला लिया। अपने अस्पतालमें रिसेप्शनपर बैठे हुए व्यक्तिसे कहा कि अब आगेसे जो भी मरीज आयें, केवल उनका नाम लिखना फीस नहीं लेना। फीस मैं स्वयं लूँगा।

फिर जब मरीज आते तो अगर वह गरीब मरीज होते तो उन्होंने उनसे फीस लेना बन्द कर दिया। केवल सम्पन्न मरीज देखते तो ही उनसे फीस लेते। धीरे-धीरे शहरमें उनकी प्रसिद्धि फैल गयी। दूसरे डॉक्टरोंने सुना। उन्हें लगा कि इस कारणसे हमारी प्रैक्टिस कम हो जायगी और लोग हमारी निन्दा करेंगे। उन्होंने एसोशिएशनके अध्यक्षसे कहा।

एसोशिएशनके अध्यक्ष डॉ० वासुभाईसे मिलने आये। उन्होंने कहा कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? तब वासुभाईने जो उत्तर दिया, उसको सुनकर उनका मन भी उद्वेलित हो गया। वासुभाईने कहा कि मैं अपने जीवनमें हर परीक्षामें मेरिटमें पहली पोजीशनपर आता रहा। एम०बी०बी०एस० में भी, एम०डी० में भी गोल्ड मेडलिस्ट बना। परंतु सभ्यता-संस्कार और अतिथि-सेवामें वह गाँवकी महिला, जो बहुत गरीब है, वह मुझसे आगे निकल गयी। तो मैं अब पीछे कैसे रहूँ?

इसलिये मैं अतिथि-सेवामें और मानव-सेवामें भी गोल्ड मेडलिस्ट बनूँगा। इसलिये मैंने यह सेवा प्रारम्भ की और मैं यह कहता हूँ कि हमारा व्यवसाय मानव-

सेवाका है। सारे चिकित्सकोंसे भी मेरी अपील है कि यह कार्य सेवा-भावनासे करें। गरीबोंकी नि:शुल्क सेवा करें, उपचार करें। यह व्यवसाय धन कमानेका नहीं है। परमात्माने मानव-सेवाका अवसर प्रदान किया है। एसोशिएशनके अध्यक्षने वासुभाईको प्रणाम किया और धन्यवाद देकर उन्होंने कहा कि मैं भी आगेसे ऐसी ही भावना रखकर चिकित्सकीय सेवा करूँगा।

[सोशल मीडियासे साभार]

(२)

ईमानदारी

मेरे लड़के राकेश कुमारने क्लोज सर्किट कैमरा आदि लगानेकी एक छोटी-सी कम्पनी खोल रखी है। उसमें दीपक नामका एक लड़का काम करता है। वह शान्तचित्त तथा निष्ठावान् है। ईमानदारीकी तो वह एक मिसाल है।

यह बात सन् २०१३ ई०के जनवरी माहकी है। उस समय जाड़ा पड़ रहा था। मैं देखता कि वह ठण्डकमें भी एक हाफ स्वेटर पहनकर समयपर आ जाता और काम करके चला जाता। अचानक मेरे मनमें एक विचार आया। मेरे पास एक काले रंगका प्रिंस सूट था, जो ठीक हालतमें था, पर मुझे छोटा होनेके कारण व्यर्थमें आलमारीमें टँगा रहता था। उसे मैंने दीपकको दे दिया, ताकि ठण्डकसे उसके शरीरकी रक्षा हो सके। उसने उसे सहर्ष ले लिया और जैसे पॉलीबैगमें मेरे घरसे ले गया था, वैसे ही अपने घरमें रख आया। चार दिन बाद एक आदमीको चौदह हजार रुपये देना था, रुपया मैंने अपनी पत्नीको रखनेके लिये दिया था, मैंने उनसे माँगा। वह कुछ देर तो इधर-उधर खोजीं, नहीं मिलनेपर अचानक स्मरण आते ही मुझसे बोलीं कि 'रुपया उन्होंने उसी कोटकी भीतरवाली जेबमें रख दिया था।' सुनते ही मैं सकतेमें आ गया; क्योंकि उस सूटको दिये हुए चार दिन बीत गये थे। मैंने समझ लिया कि रुपया मिलना सम्भव नहीं है। जिसे पैसा देना था, उसे बादमें आनेको कहकर उदास मनसे आकर कमरेमें बैठ गया। इसी बीच इस बातकी जानकारी मेरे लड़के राकेशको हुई। उसने रुपया मिलना असम्भव समझकर भी दीपकको फोनकर बुलाया। वह झट आ गया। मैंने देखा कि मेरा दिया सूट उसने नहीं पहन रखा था। मैंने सूटके विषयमें उससे पूछा तो उसने कहा कि उसे घरमें रख दिया है। मेरे लड़केने बताया कि कोटके भीतरी जेबमें चौदह हजार रुपया रखा है। सुनकर उसके चेहरेपर घबड़ाहट स्पष्ट हो गया। उसने झट मेरे लड़केकी मोटरसाइकल ली और यह कहकर अपने घरकी ओर भागा कि न जाने उसमेंसे रुपया कोई निकाल तो नहीं लिया। उसके जानेके बाद मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि रुपया नहीं मिलेगा।

कुछ देर बाद दीपक आया। उसके हाथमें सूटवाला पॉलीबैग था। उसने उसे लाकर मेरे सामने रखते हुए कहा—'चाचाजी! इसमें जैसा-का-तैसा रुपया रखा है। भगवान्‌का आशीर्वाद है कि इसपर किसीकी नजर नहीं गयी, वरना आज तो आपके सामने मैं मुँह दिखानेके लायक नहीं रहता।' मेरी पत्नीने कोटकी जेबसे चौदह हजार रुपये निकालकर मेरे सामने रख दिये, हजार-हजारके चौदह नोट जिस तरह मैंने दिये थे, वैसे ही थे। कभी मैं रुपया देखता तो कभी दीपकको। उसके चेहरेपर आत्मविश्वास और सन्तोष स्वत: परिलक्षित था। उसकी ईमानदारीपर मैं मुग्ध हो उठा। मैंने उसे दो हजार रुपये देने चाहे, पर उसने लेनेसे इनकार करते हुए कहा—'चाचाजी! एक ईमानदारी ही तो मेरी पूँजी है, जिसकी कीमत देकर आप मुझे लांछित करना चाहते हैं। आपका आशीर्वाद ही मेरे लिये काफी है।' सुनकर मैंने दीपककी गरीबीमें ईमानदारीका अविस्मरणीय विराट् चेहरा देखा, जो मेरे अन्त:करणमें आज भी विद्यमान है। मैंने पुन: उसे सूटवाला थैला दे दिया और वह खुशी-खुशी स्वीकारकर मुसकुराता चला गया।—**नन्देश्वर**

मनन करने योग्य

महामृत्युंजय मानव

(१)

ब्रिटिश हुकूमतने लोकमान्य तिलकको माडले जेलमें कैद कर रखा था। एक दिन जेलके अधिकारीने उन्हें उनकी पत्नीकी मृत्युकी सूचना दी और साथ ही माफी माँगनेपर छोड़नेकी बात कही। तिलकने इनकार कर दिया। उन्होंने लिखा—यदि ब्रह्मा हंससे नाराज हो जाय तो वह उसे कमल-सरोवरमें विचरण करनेसे रोक सकते हैं, किंतु उसकी नीर-क्षीर-विवेक-शक्तिको नष्ट नहीं कर सकते।

उस समय तिलकका एकमात्र बालक मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ था। किंतु वे केसरी कार्यालयके कार्यमें व्यस्त थे। एक पड़ोसी बालकने आकर उसकी मृत्युकी सूचना दी।

'अच्छा, तो वह चला गया। तुम लोग उसे लेकर श्मशान पहुँचो। मैं शेष काम निपटाकर सीधा वहीं आ जाऊँगा।' थोड़ी देरमें कागजात सहकर्मीको सौंपकर थोड़ा पानी पीकर और कृष्णके चित्रको नमनकर वे सीधे श्मशान पहुँच गये।

ऐसे महामानवको हमारा नमन!

(२)

भगतसिंहको फाँसी लगनेके सात दिन पहले उनका परिवार उनसे मिलने जेलमें पहुँचा। सरदारने सभीसे हँस-हँसकर बातें कीं। माँसे बोले, 'तू मेरी लाश लेने मत आना। कहीं आँसू आ गये तो लोग कहेंगे शहीदकी माँ होकर रोती है और हाँ, अब दादाजी ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रहेंगे, तू उनके पास बैठ, जाकर उनकी सेवा कर।'

जेल अधिकारी चतर सिंहसे उन्होंने कहा—

'दिलसे न निकलेगी मरकर वतनकी उल्फत।
मेरी मिट्टीसे भी खुशबू ऐ वतन आयगी॥'

भारतमाताकी स्वतन्त्रताके लिये हँसते हुए फाँसीके फन्देपर झूलनेवाले ऐसे महान् देशभक्तको शत-शत नमन!

(३)

द्रौपदीने अपने पाँचों पुत्रोंके हत्यारे अश्वत्थामाको क्षमा कर दिया था—उन्होंने पाण्डवोंसे कहा था, 'पुत्रशोक कैसा होता है, यह मैं अनुभव कर रही हूँ, इनकी पूजनीया माता कृपीदेवीको यह शोक न हो, वे मेरे समान रुदन न करें, इसके लिये इन्हें अभी छोड़ दीजिये। जिनकी कृपासे आप सबने अस्त्रज्ञान पाया है, वे गुरु द्रोणाचार्य ही यहाँ पुत्ररूपमें खड़े हैं, इन्हें झटपट छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये।'

अपने पुत्रों और भाइयोंके हत्यारेके प्रति भी क्षमाभाव रखनेवाली ऐसी महान् नारीको शत-शत नमन!

(४)

वसिष्ठने अपने सौ पुत्रोंके हत्यारे विश्वामित्रको क्षमा कर दिया। इतना ही नहीं कुटीके बाहर बैठी पत्नी अरुन्धतीसे कहा—'आकाशमें चन्द्रमाकी चाँदनी भी विश्वामित्रके तपके तेजके समकक्ष नहीं है।'

हत्याके उद्देश्यसे आये कुटियाके पीछे छिपकर बैठे-बैठे विश्वामित्र अपनेको वसिष्ठके चरणोंमें गिरनेसे रोक नहीं पाये। वसिष्ठ-सदृश महान् सन्तको शत-शत नमन!

(५)

सन्त मंसूरके अनलहक (अहं ब्रह्मास्मि) कहनेपर खलीफाने उसके हाथ-पैर कटवा दिये, फिर भी वह नहीं माना, तो जल्लादसे उसकी आँखोंमें गरम शीशा डालकर लाल चिमटेसे जबान खींच लेनेको कहा। मरते व्यक्तिकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी।

उसने जल्लादसे बैठानेको कहा; क्योंकि जाँघोंतकसे पैर कटनेके बाद वह पड़ा हुआ था। उसे बिठाया गया—'उसने कहा ए परवरदिगार! ये जल्लाद और ये बादशाह मेरे सबसे अच्छे मित्र हैं, मुझे स्वयं मरकर तेरे पास आनेमें बहुत लम्बा समय लगता। इन्होंने मेरा रास्ता बहुत छोटा कर दिया। जब ये मेरी आँखोंमें शीशा डालेंगे और मेरी जुबान खींचेंगे तो मैं तुरंत तेरे पास आ जाऊँगा।'

इस महामानवको परमात्माके करीब जगह जरूर मिली होगी।

मेरा इन्हें शत-शत प्रणाम!—**श्रीगोपालकृष्णजी जिंदल**

श्रीगीता-जयन्ती [४ दिसम्बर, २०२२ ई०]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), रविवार, दिनाङ्क ४ दिसम्बर, २०२२ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (६) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (७) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीता—सचित्र, श्लोकार्थसहित, ग्रन्थाकार

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजीमें उपलब्ध]

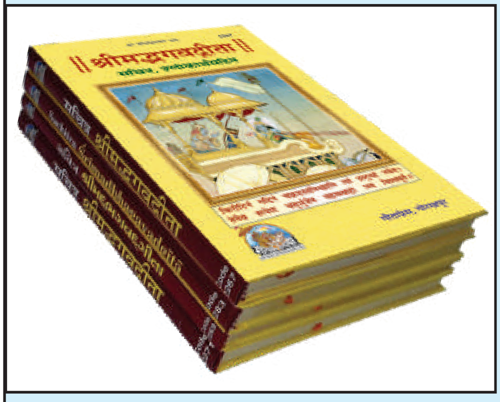

विश्व-साहित्यमें श्रीमद्भगवद्गीताका अद्वितीय स्थान है। मनुष्यमात्रको कर्तव्य और मुक्तिकी शिक्षा प्रदान करनेवाला यह एक अलौकिक एवं प्रासादिक ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल भाषामें उसका अर्थ और अन्तमें आरती दी गयी है। साथ ही प्रसङ्गानुकूल यथास्थान बहुत ही मनोरम 129 आकर्षक चित्रोंको भी दिया गया है। इसके स्वाध्यायसे सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी गीताके भावोंको आसानीसे हृदयंगम कर अपने जीवनको धन्य कर सकता है। **(कोड 2267)** हिन्दी मू० ₹280, **(कोड 2269)** गुजराती मू० ₹300, **(कोड 2271)** मराठी मू० ₹ 250, **(कोड 2283)** अंग्रेजी मू० ₹280 **(प्रत्येकका डाकखर्च ₹ 70/-)**

प्र० ति० 20-10-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

जनवरी सन् 2023 का विशेषाङ्क— 'दैवीसम्पदा-अङ्क'

सामान्य रूपसे दैवीसम्पदाका तात्पर्य है—सभी सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न रहना। आज चारों ओर युद्धकी अनर्थकारी विभीषिकाएँ मुँह बाये खड़ी हैं; सर्वत्र भय, आतंक एवं असुरक्षाके बादल मँडरा रहे हैं, व्यक्ति व्यक्तिको और राष्ट्र राष्ट्रको हड़पना चाहता है, अपने अहंकारकी संतुष्टिके लिये राष्ट्रशासक कुछ भी अनर्थ करनेके लिये सहर्ष कटिबद्ध हैं, धर्म एवं अधर्मका तनिक भी विवेक रह नहीं गया है, और अन्यायोपार्जित द्रव्यके द्वारा भोगासक्ति ही मानवका उद्देश्य बन गया है। कल्याणके प्रेमी पाठक महानुभावोंका बराबर यह सुझाव आता रहा कि हम आसुरीभावका सर्वथा परित्यागकर एक आदर्श मानव और फिर दैवीसम्पदाको आत्मसात्कर भगवत्प्राप्तिके मार्गमें कैसे बढ़ सकते हैं! भगवान्ने गीतामें दैवीसम्पदा और आसुरी-सम्पदाको दो भागोंमें बाँटकर जो दिग्दर्शन कराया है, उसकी कितनी महिमा है, कैसा माहात्म्य है, वर्तमान संदर्भमें उसकी क्या और कितनी आवश्यकता है, दैवी गुणसम्पत्तिको आत्मसात् करने और न करनेका क्या परिणाम होगा, आसुरी सम्पत्तिको सुख माननेका क्या दुष्परिणाम होगा और फिर कैसी दुर्गति होगी—इसका शास्त्रीय स्वरूप तथा ठीक-ठीक व्यावहारिक स्वरूप प्रदर्शित करनेके लिये कल्याणका एक विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाय। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर आगामी वर्ष 2023 ई० में '**दैवीसम्पदा-अङ्क**' नामसे विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका विचार सुनिश्चित हुआ है। इस अंकमें आसुरी सम्पत्तिके दोष एवं दैवी सम्पत्तिके गुणोंका विविध आख्यानों, पौराणिक कथानकों, आदर्श चरित्रों और रोचक कथाओंके माध्यमसे उसे पुष्ट करते हुए रोचक एवं कथात्मक सामग्री प्रकाशित की जायेगी। आशा है कि पूर्वकी भाँति यह सभीके लिये संग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

वार्षिक-शुल्क—₹ 300 **पंचवर्षीय-शुल्क—₹ 1500**

मासिक अङ्कोंकी सुनिश्चित उपलब्धिके लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ 300 के अतिरिक्त ₹ 200 देनेपर सभी 11 मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये। 09235400242 / 244 फोन एवं **8188054404, 9648916010 WhatsApp** भी कर सकते हैं।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005

आवश्यक सूचना

पाठकोंसे निवेदन है कि गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुस्तकें अपने निकटके पुस्तक-विक्रेता, स्टेशन-स्टॉल अथवा गीताप्रेसकी निजी दूकानोंसे ही खरीदें, इससे डाकखर्च और समयकी बचत होगी।

Online पुस्तकें कूरियर/डॉकसे गीताप्रेसकी अधिकृत website:gitapress.org अथवा gitapressbookshop.in से ही मँगवायें। यहाँसे आपको छपे मूल्यपर ही निर्धारित डॉकखर्च जोड़कर पुस्तकें भेजी जाती हैं।

आजकल बहुत-सी ई-कॉमर्स कम्पनियोंके प्लेटफार्मपर गीताप्रेसकी पुस्तकें बहुत अधिक मूल्यपर अथवा कई गुना मूल्यपर बेची जा रही हैं। ऐसी परिस्थितिमें किसी अन्य प्लेटफार्मपर पुस्तकोंका ऑर्डर करते समय gitapress.org पर पुस्तकोंका मूल्य अवश्य देख लेवें।

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)